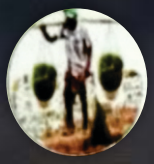

www.kahaar.in

ISSN (p): 2394-3912
ISSN (e): 2395-9369
त्रैमासिक 9 (1) जनवरी – मार्च, 2022
प्रिंट कापी : रूपये 50/-
ऑनलाइन : रूपये 25/-

कहार

जन विज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

KAHAAR

A multilingual magazine for common people

प्रकाशक
प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसाइटी, लखनऊ
(www.phssfoundation.org)
सह-प्रकाशक
पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ
(www.prithvipur.org)
बचपन क्रिएशन्स
(www.bachpanexpress.com, www.bachpancreations.com)
सोसायटी फॉर इन्वायरमेन्ट एण्ड पब्लिक हेल्थ (सेफ), लखनऊ

Prof. H. S. Srivastava Foundation for Science and Society, Lucknow, India, celebrated the 21st Puniya Tithi (anniversary) of Prof. H. S. Srivastava on dated March 09th, 2022.

On this special occasion Prof. (Dr.) Shailendra K Saxena, Vice Dean and Head, Center for Advanced Research, King George's Medical University, Lucknow, was the chief guest and delivered the memorial lecture on topic entitled "Pandemic to endemic: Learning to live with COVID-19 & it's variants".

The programme was started with generous floral tribute to Prof. H. S. Srivastava at office and live joined through webinar.

Prof. S. K. Barik, President PHSS Foundation, Lucknow, welcome the chief guest, special invitees and all participants and highlighted the work of Prof. Srivastava and importance of memorial lecture. After that Prof. Rana Pratap Singh, General Secretary PHSSFSS, welcome all the guest, participants and underlined his association and memory with Prof. H.S. Srivastava. Dr. R. D. Tripathi, Vice President of PHSSFSS welcome and introduce the Chief Guest of the function.

Prof. S.K. Saxena nicely presented the hidden story of COVID-19. The lecture particularly focused on History, origin, causes, precautions and future direction researches related to COVID pandemic. Dr. Saxena stated that, how CORONA virus affected our internal organs and how our immune system work against the viruses and what are the first aid to prevent it. They also informed that recently several drugs are coming in the market along with the available vaccines.

Dr. S. K. Sopory, former VC JNU, New Delhi, happy with the progress of the Foundation and appreciated the work of Dr. Saxena and his team during COVID period. Dr. Sopory also discuss the work of Prof. Srivastava.

Prof. (Dr.) Malvika Srivastava, recall the memory of late Prof. Srivastava, and discuss about the time spend with sir and highlighted the personal as well as research activities during the learning period.

Dr. P.K. Seth, Former president PHSSFSS and NASI Senior Scientist presented the concluding remarks of the progreamme and profusely appreciated the lecture of Dr. Saxena and ask that the lecture is a real tribute to Prof. Srivastava .

At the end of the programme, Dr. R. S. Dwivedi Former President PHSSFSS, given vote of thanks to the Chief Guest and all the participants. The programme was coordinated by Dr. Rajesh Bajpai.

कहार

जन विज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

त्रैमासिक 9 (1) जनवरी – मार्च, 2022

प्रधान संपादक
प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह, लखनऊ

सम्पादक
डॉ. मधु भारद्वाज
प्रो. गोविन्द जी पाण्डेय
डॉ. संजय द्विवेदी

सह-सम्पादक
डॉ. अरविन्द कुमार सिंह, लखनऊ
डॉ. मानस गोस्वामी, तिरूबररूर
डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह, अमरकटँक
डॉ. सीमा मिश्रा, गोरखपुर
श्री आकाश वर्मा, लखनऊ
श्री नन्द किशोर गुप्ता, देवघर
डॉ. पीयूष गोयल, नई दिल्ली
डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, मऊ
डॉ. राजेश वाजपेयी, लखनऊ
श्री आदेश सिंह, बसई, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
डॉ. राम सनेही द्विवेदी
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, बालापार, गोरखपुर
डॉ. रामचेत चौधरी, गोरखपुर
प्रोफेसर राकेश सिंह सेंगर, मेरठ
डॉ. सुमन कुमार सिन्हा, गोरखपुर
प्रोफेसर रामचन्द्र, लखनऊ
डॉ. अनुज कुमार सक्सेना, सीतापुर
डॉ. अर्चना (सेंगर) सिंह, कनिकट (यूएस.ए.)

सलाहकार मण्डल
प्रोफेसर सरोज कान्त बारिक, लखनऊ
प्रोफेसर प्रहलाद के. सेठ, लखनऊ
प्रोफेसर प्रफुल्ल वी. साने, जलगाँव
प्रोफेसर रामदेव शुक्ल, गोरखपुर
प्रोफेसर शशि भूषण अग्रवाल, वाराणसी
डॉ. एस.सी. शर्मा, लखनऊ
प्रोफेसर सूर्यकान्त, लखनऊ
प्रो. अरूण पाण्डेय, भोपाल
डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी, लखनऊ
प्रोफेसर रणवीर दहिया, रोहतक
प्रोफेसर एन. रघुराम, दिल्ली
प्रोफेसर उमेश वशिष्ठ, लखनऊ
इ. रविन्द्र कुमार श्रीवास्तव, लखनऊ
डॉ. सिराज वजीह, गोरखपुर
डॉ. मधु भारद्वाज, लखनऊ
प्रो. उपेन्द्र नाथ द्विवेदी, लखनऊ
प्रोफेसर मालविका श्रीवास्तव, गोरखपुर
डॉ. निहारिका शंकर, नोएडा
श्री सुधीर शाही, तुर्क पट्टी
श्री उपेन्द्र प्रताप राव, दुदही
इं. तरूण सेंगर, इरविन अमेरिका
डॉ. पूनम सेंगर, चण्डीगढ़
श्री अविनाश जैसवाल, दुदही

आवरण फोटो
श्री प्रकाशवीर सिंह, लखनऊ
प्रबन्ध-सम्पादक
श्री अंचल जैन, लखनऊ
सोशल मीडिया
श्री रंजीत शर्मा, लखनऊ
श्री कृष्णानंद सिंह
श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ

संपादकीय पता
04, पहली मंजिल, एल्डिको एक्सप्रेस प्लाजा, शहीद पथ उतरेठिया, रायबरेली रोड, लखनऊ–226 025 भारत
ई–मेल : phssoffice@gmail.com/dr.ranapratap59@gmail.com
वेबसाइट : www.kahaar.in
https://www.facebook/kahaarmagazine.com

सहयोग राशि	प्रिंटकापी	ऑनलाइन
एक प्रति	: 50 रूपये	25 रूपये
वार्षिक	: 180 रूपये	80 रूपये

(प्रिंटकापी की कम से कम 100 प्रतियों का ही आर्डर स्वीकार किया जायेगा।)

सहयोग राशि 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटीः लखनऊ' के नाम भेजें।
खाता संख्या– 2900101002506, कैनरा बैंक, बी.बी.ए. विश्वविद्यालय, लखनऊ
IFSC Code - CNRB-0002900

घोषणा

लेखकों के विचार से 'कहार' की टीम का सहमत होना जरूरी नहीं। किसी रचना में उल्लेखित तथ्यात्मक भूल के लिए 'कहार' की टीम जिम्मेदार नहीं होगी।

लेखकों के लिए

वैचारिक रचनाओं में आवश्यक संदर्भ भी दें एवं इन संदर्भों का विस्तार रचना के अन्त में प्रस्तुत करें। अंग्रेजी रचनाओं का हिन्दी तथा हिन्दी सहित अन्य भाषाओं की रचनाओं का अंग्रेजी या हिन्दी में सारांश दें। मौलिक रचनाओं के साथ रचना के स्वलिखित, मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाणपत्र दें। लेखक पासपोर्ट साइज फोटो भी भेंजे। रचनाऐं English के Times New Roman (12 Point) और हिन्दी के लिए कृति देव 10 में Word Format (Window 2003) में टाइप करें। तस्वीरें, चित्र, रेखाचित्र आदि PDF Format में भेंजे।

विज्ञापन दाताओं के लिए

विज्ञापन की विषय वस्तु के साथ ही भुगतान 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी, लखनऊ' के नाम मल्टीसिटी चेक या बैंक ड्राफ्ट द्वारा सम्पादकीय पते पर भेजें। ऑनलाइन पेमेंट उपरोक्त* बैंक खाते में कर सकते है।

रूपये 6000/– पूरा पृष्ठ (सादा) रूपये 4000/– आधा पृष्ठ (सादा)
रूपये 10000/– पूरा पृष्ठ (रंगीन) रूपये 6000/– आधा पृष्ठ (रंगीन)

For Advertisers

Please send payment in form of DD or multicity cheques in favour of 'Professor H.S. Srivastava Foundation for Science and Society' Payable at Lucknow along with subscription forms or Advertisement draft. Online Payment can also be made in the account marked above as*.

Rs. 6000/- Full Page (B/W) Rs. 4000/- Half Page (B/W)
Rs. 10000/- Full Page (Color) Rs. 6000/- Half Page (Color

कहार एक पारम्परिक मनुष्य वाहक के लिए प्राचीन देशज सम्बोधन है। कहार की तरह ही यह पत्रिका जानकारियों एवं लोगों के बीच सेतु बनने की कोशिश कर रही है।

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय		पृष्ठ संख्या
01	सम्पादकीय	प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह	01
02	Editorial	Prof. Rana Pratap Singh	03
03	फसल अवशेषों द्वारा मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन	डॉ. आर.नायक, डॉ. आर.के.सिंह, डॉ आर.पी. सिंह, डॉ. आर.के. आनन्द, डॉ. एल.सी. वर्मा एवं डा. ए.के.यादव	05
04	कब तक तू रहेगी मौन	अरुणिमा बहादुर खरे	08
05	पपीते की फसल के प्रमुख रोग एवं उनके निदान	डॉ0 आर.एस. सेंगर, डॉ0 रेशू चौधरी, डॉ0 डी.के. श्रीवास्तव एवं डॉ0 राजीव प्रताप सिंह	09
06	भारतीय मूल के अत्यंत मीठे पौधे	डॉ0 राम स्नेही द्विवेदी	14
07	हरियाणवी–कविता प्रदूषण	डॉ0 रणबीर दहिया	16
08	पूर्वी उ0प्र0 में खेती किसानी को दिया नया आयामः पद्मश्री चन्द्रशेखर सिंह	डॉ0 रूद्र प्रताप सिंह	17
09	हिन्दी कविता यह रागी हुई आभागी क्यो ?	अज्ञात	18
10	कोरोनोवायरस महामारीः वैकल्पिक चिकित्सा	डॉ0 यूसुफ अख़्तर	19
11	स्टीफन हॉकिंग		22
12	हिन्दी कविता थोड़ी सी रह जाती है माँ	अज्ञात	24
13	Banana An Efficient Crop for Multiplying Farmer Income	Mohd Sharik, Jyoti Singh and R.S. Sengar	25
14	हिन्दी कविता – उम्र की डोर से फिर	अज्ञात	32
15	Heavy Metal Genotoxicity: An Insight to HumanDisease	Rashmi Srivastava, Nidhi Mishra, Neeshma Jaisawal, Shivji Malviya, Rajesh Bajpai and Rakesh Srivastava	33
16	Shyama Prasad Mukherjee Rurban Mission (SPMRM): A Government Initiative towards	Rohit Kumar Mishra, Ashutosh Pandey and Vani Mishra	37

सम्पादकीय

छूटी राहों और टूटे धागों की तलाश

कलेण्डर मे वर्ष 2022 आ गया। शुभकामनाएँ। यह नई उम्मीदों को तलाशने और उलझी हुई चुनौतियों को सुलझाने के लिए नए सिरे से कमर कसने का समय हैं।

हर नये मुकाम पर बीते समय को ठहर कर देखने का मन करता हैं, और हम चैतन्य होकर विचार करें तो समझ सकते हैं, कि हमनें पिछले वर्ष जैसा सोचा था और जो उम्मीदें की थी, उसमें क्या हो पाया और क्या नहीं हो सका ? हमारे मन, हमारी राहें, हमारे रिश्ते कितना जुड़े और कितना टूटे। हम अपने चुने रास्तों पर अपनी स्वयं की तय की हुई मंजिल की ओर कितना चल पाये और कहाँ-कहाँ अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के चलते या उलझनों को सुलझा न पाने से हमें उन रास्तों से विचलित होना पड़।

पिछला वर्ष वैश्विक महामारी कोरोना के नाम रहा और पूरी दुनिया उसके खतरों और समाधान के ज्वार चढ़ाव मे उलझी रही। भारत के विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों और स्वास्थ सुविधाओं तथा स्वास्थ ढाँचो के साथ अलग-अलग तरह की समस्याएँ तथा सफलताएँ सामने आयी । कुछ लोगों, समाजों तथा सरकारों ने महामारी और मानवीय जमघटों का बेहतर प्रबंधन किया, और कुछ ने खराब। कुव्यवस्था, भ्रष्टाचार, कुप्रबंधन एवं मृत्यु की चर्चाओं के साथ सुव्यवस्था, सुप्रबंधन एवं उपचार के दावे चलते रहे। कोरोना काल के पहले तथा दूसरे दौर के बाद अब तीसरा दौर भी आ गया। अब लगने लगा हैं, कि हमारे शरीर ने इस बेलगाम वायरस को भी धीरे धीरे अपने जैविक तन्त्र में साधना शुरू कर दिया हैं।

विशेषज्ञों के आकलन आने लगे हैं, कि कोरोना के घातक स्वरूप अब स्वतः कमजोर पड़ने लगेंगे और स्थितियाँ बेहतर होनी शुरू हो जाएँगी। दुनिया भर के लोग अनेक प्रतिकूलताओं की तरह ही कोरोना के साथ जीना भी सीख लेगें। उम्मीद करें कि 2022 मे लोगों की यात्राएं, समारोह, गोष्ठियां, उद्योग सब फिर से शुरू हो जाएंगे और चेहरों से मास्क हटने से लोग थोड़ अधिक जाने-पहचाने नजर आयेंगे।

'कहार' पत्रिका के सात वर्षों के आनलाइन तथा प्रिन्ट कपियों के सफल प्रकाशनों के बाद हमने पिछले वर्ष तय किया था, कि अब इसे आनलाइन ही प्रकाशित किया जाय। 'बचपन क्रिएशन्स' के साथ आने के बाद आनलाइन वितरण तथा विपणन के बेहतर प्रबंध की उम्मीदें बनी। हमें संतोष हैं कि इस कोरोना काल मे भी हम पत्रिका का सुचारु रूप से प्रकाशन कर पाये और हमारे लेखकों, पाठको, सम्पादकीय एवं प्रोडक्शन टीम का उत्साह बना रहा। पाठकों से हमारा सम्पर्क नहीं हो पा रहा है, इसलिए उनकी भागीदारी का अन्दाजा अभी नहीं लग पा रहा है।

'कहार' के ये आठ वर्ष हमारे लिए अनेक तरह के प्रयोगों एवं नवाचारों के वर्ष रहें। अपने विमर्शों और अनुभवो की साझी सीख से हमने लगातार इसे समृद्ध किया। कुछ नयें पाठक, लेखक, सम्पादक एवं प्रबंधक जोड़ने रहें। कुछ साथी कोरोना संक्रमण, बढ़ती उम्र या अन्य कारणों से इस यात्रा से अलग भी हुए । यह एक प्राकृतिक चक्र हैं। कुछ जाते हैं, तो ही नए लोगो के लिए जगह बनती है। इस वर्ष से 'कहार' मे एक नई ऊर्जावान संपादक डा० मधु भारद्वाज शामिल हुई हैं। हम उनका स्वागत करते हैं । इसके प्रकाशन एवं सोशल मीडिया प्रबंधन एवं सहयोग के लिए दो और युवा साथी डा० राजेश बाजपेयी एवं कृष्णानंद सिंह इस वर्ष से 'कहार' टीम का हिस्सा बन रहे हैं। स्वागत ।

हाल ही प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन ने ग्रामीण विकास एवं पर्यावरण प्रबंधन को समर्पित अपना नया शोध और विकास केंद्र शुरू किया हैं, और हमने विभिन्न क्षेत्रों मे कुछ गाँवो को अपने अध्ययन तथा विकास के लिए चुना है। पत्रिका के कुछ पृष्ठें को हम इस वर्ष से अपने इन्हीं प्रयासों और प्रभावों पर केंद्रित करना चाहते हैं। कहार से चुनी हुई कुछ दीर्घकालीन उपयोग के आलेखों एवं सामग्री का एक वार्षिक अंक प्रिन्ट कापी मे प्रकाशित करने की भी योजना बन रही है। उम्मीद हैं, इन सभी प्रयासों में आपका सहयोग मिलता रहेगा।

गाँवो का विकास भारतीय परिदृश्य मे विकास की कड़ी में एक छूटी हुई राह है। देश की स्वतंत्रता के पहले की बात छोड़ दें, तो स्वतंत्र भारत के अनेकों प्रयास, योजनाएं और ढांचे गाँवो के विकास को प्रभावी दिशा नहीं दे पाये। गाँवों को अच्छी सड़कें, अच्छा पोषण, अच्छा संचार नेटवर्क, अच्छे स्कूल-कॉलेज, स्वास्थ्य के ढाँचे तथा सम्मानजनक रोजगार जनित अर्थव्यवस्था नहीं मिल पायी। पंचायती राज लागू होनें के बाद जिस तरह के ग्रामीण विकास और व्यापक भागीदारी की अपेक्षा की गयी थी, वह भी नहीं हो पायी। औरतों, बच्चों, बुजुर्गों की बहुतायत संख्या अब भी कुपोषण की

शिकार हैं। भारतीय गाँवों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ थोड़ी बेहतर हुई हैं, परन्तु पर्यावरणीय और सांस्कृतिक स्थितियाँ लगातार गिरती जा रही हैं। पानी कम होता जा रहा है, और प्रदूषित भी। मिट्टी की उर्वरता घट रही हैं, और जमीन तथा फसलों की जैव विविधता भी। खेती में जहरीले रसायनों एवं खादों के अन्धाधुंध प्रयोग ने कृषि की लागत तो बढ़ाई है, परन्तु न तो उपज की निश्चितता बढ़ी है, न किसानों एवं कृषि मजदूरों की आय। परन्तु मिट्टी, पानी, हवा और खाद्य पदार्थों की विषाक्तता बढ़ी है। स्वास्थ्य सेवाएँ अधिक नहीं सुधर पायी हैं। परन्तु आबादी और बीमारियाँ बढ़ीं हैं। रासायनिक कृषि के अदान केन्द्रीकृत कारखानों में उत्पादित होते हैं, इसलिए स्थानीय उद्योग धन्धे गाँवों और कस्बों से लगातार गायब होते जा रहे हैं, और ग्रामीण युवा बड़े शहरों में काम धन्धे की तलाश में लगातार विस्थापित हो रहे हैं, जहाँ न तो उनका रोजगार स्थायी हो पाता, न ही जीवन स्तर सुधर पाता। सरकारों के प्रयास योजनाओं से जमीन पर कम ही उतर पाते। योजनाओं के कार्यान्वयन और प्रभाव आकलन की समुचित व्यवस्थाओं और उचित जवाबदेही का न होना सम्भवतः इसका प्रमुख कारण हैं।

भारतीय गाँवों मे अब भी एक बड़ी आबादी बसती हैं। शहरों की आपाधापी और प्रदूषण से आतंकित होकर तथा घर से आनलाइन काम करने की सहूलियतों को देखते हुए बड़ी संख्या में शिक्षित युवा और बुजुर्ग लोग गाँवों मे बसना चाहते हैं। इसके लिए गाँवों मे सड़कें, अस्पताल, ऊर्जा के साधन, ऑनलाइन नेटवर्क, स्कूल और स्वच्छ वातावरण खड़ा करना होगा। सांस्कृतिक रूप से सामूहिकता और सरलता को लोगों के जीवन में वापस लाना होगा। छोटे बड़े हरित उद्योगों, शिक्षा और सेवाओं की श्रृंखला कायम करनी होगी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक कार्यपद्धति तथा नवाचारी तकनीकों तथा तकनीकी साधनों से लोगों का जीवन समृद्ध करना होगा। हमारा नया शोध केन्द्र इसी पहल को आगे बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प है।

राणा प्रताप

(राणा प्रताप सिंह)
www.ranapratap.in

Editorial

Searching for Missing Tracks and Broken Threads

The year 2022 has arrived in the calendar. Congratulations. It is time to seek new hope and gear up afresh to solve entrenched challenges.

At every new stage, we need to stop and look at the past, and if we think consciously, then we can understand that what we had thought and expected in the previous phase, what happened and what could not happen? Our minds, our paths, and our relationships are extended to which extent and to which extent it was broken down. How much we were able to walk on our chosen paths towards our own decided destination and where we had to deviate from those paths due to many economic, social and cultural problems or not being able to solve the problems.

Last year went in the name of the global pandemic Corona and the whole world was engrossed in the ups and downs of its dangers and solutions. Different regions of India faced different problems and successes with different economic, social and cultural scenarios, health facilities and health infrastructure. Some people, societies, and governments have managed epidemics and human agglomerations better, and some poorly. The claims of good order, good management and treatment continued with discussions of maladministration, corruption, mismanagement and deaths. After the first and second rounds of the Corona period, now the third round has also come. Now it seems that our body has slowly started cultivating this unbridled virus in its biological system.

Experts' assessments have started coming, that the constituents of Corona will now automatically start weakening and the conditions will start getting better. People around the world will learn to live with Corona just like many adversities. Hopefully, people's travels, celebrations, conferences, industries will all start again in 2022 and people will look a little more familiar with the removal of masks from their faces.

After seven years of successful publications of 'Kahaar' magazine in online and print copies, we had decided last year that now it should be published online only. With the advent of 'Bachpan Creations', expectations of better management of online distribution and marketing were raised. We are satisfied that even in this Corona era, we were able to publish the magazine smoothly and the enthusiasm of our writers, readers, editorial and production team remained. We are not able to get in touch with the readers, so their participation is not yet known.

May these eight years of 'Kahaar' be years of many experiments and innovations for us. We have continuously enriched it with the shared learnings of our discussions and experiences. Keep adding some new readers, writers, editors and managers. Some companions also separated from this journey due to corona infection, increasing age or other reasons. It is a natural cycle. When some leave, only then space is made for new people. From this year, a new energetic editor Dr. Madhu Bhardwaj has joined 'Kahaar' team. We welcome that for its publication and social media management and support, two more young partners Dr. Rajesh Bajpai and Krishnanand Singh are becoming part of its team from this year.

Recently Professor H.S. Srivastava Foundation has started its new research and development centre dedicated to rural development and environmental management, and we have selected some villages in different areas for our study and its development. We would like to focus a few pages of the magazine on our efforts and influences from this year. There is also a plan to publish an annual issue of selected articles and materials from 'Kahaar' in print copy. Hope you will continue to give your cooperation in all these endeavors.

The development of villages is a missed path of the link of development in the Indian scenario. Leaving aside the pre-independence of the country, many efforts, plans and structures of independent India could not give an effective direction to the development of the villages. Villages did not get good roads, good nutrition, good communication network, good schools and colleges, health infrastructure and respectable employment generating economy. After the implementation of Panchayati Raj, the kind of rural development and wider participation that was expected, could not be achieved. A large number of women, children, elderly are still victims of malnutrition. The socio-economic conditions of

Indian villages have improved slightly, but the environmental and cultural conditions are deteriorating steadily. The water is getting depleted, and also polluted. Soil fertility is declining, and so is the biodiversity of land and crops. Indiscriminate use of toxic chemicals and fertilizers in agriculture has increased the cost of agriculture, but neither the certainty of yield has increased, nor the income of farmers and agricultural laborers. But the toxicity of soil, water, air and food has increased. Health services have not improved much. But the population and diseases have increased. The inputs of chemical agriculture are produced in centralized factories, so local industry businesses are increasingly disappearing from villages and towns, and rural youth are increasingly displaced in search of work in larger cities, where neither their employment is permanent nor their living standard. The efforts of the governments could hardly get off the ground with the schemes. The lack of proper systems and proper accountability for implementation and impact assessment of plans is probably the main reason for this.

A large population still resides in Indian villages. Terrified of the hustle and bustle of cities and the convenience of working online from home, a large number of educated youth and old people want to settle in villages. For this, roads, hospitals, energy sources, online networks, schools and clean environment will have to be created in the rural vicinity. Culturally collectivism and simplicity have to be brought back into the lives of the people. A chain of small and big green industries, education and services will have to be established. The life of the people will have to be enriched with scientific approach, scientific methodology and innovative techniques. Our new research centre is determined to take these initiatives forward.

(Rana Pratap Singh)
www.ranapratap.in

विज्ञान

फसल अवशेषों द्वारा मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धन

❑ डॉ. आर.नायक, डॉ. आर.के.सिंह, डॉ आर.पी. सिंह, डॉ. आर.के. आनन्द, डॉ. एल.सी. वर्मा एवं डा.ए.के.यादव

आज हमारी आवोहवा जहरीली होती जा रही है। धुँए के कारण आसमान में बादल छाए रहते हैं। असल में यह जहरीली गैसों का गुब्बार है जो पराली जलाने का परिणाम है। वैसे तो वर्श 2007 में ही नेशनल ग्रीन ट्रिव्यूनल ने पराली जलाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, लेकिन इस पर जरा भी अमल नहीं किया जा रहा है। धुंए के चलते दिन प्रतिदिन सड़क हादसे भी बढ़ते जा रहे हैं। यह अनुमान लगाया जा रहा हैं कि पराली जलाने से लगभग 15 प्रतिशत तक प्रदूशण बढ़ा है।

हमारे प्रदेश में हर साल लाखों टन गेहूँ और धान की फसल अवशेष (पराली) जलाये जाते हैं। पर्यावरणविदों के अनुसार यदि किसान नहीं जागे तो अगले 20 से 30 साल में भूमि की उत्पादन क्षमता बहुत कम हो जायेगी। तापमान बढ़ने से पानी की मांग 20 प्रतिशततक बढ़ेगी, जबकि इसकी उपलब्धता 15 प्रतिशत तक घट जायेगी।

पराली में जहरीली गैसें– एक वन पराली जलाने से हवा में 3 किग्रा कार्बन कण, 1513 किग्रा कार्बन डाई आक्साइड, 92 किग्रा कार्बन मोनो आक्साइड, 3.83 किग्रा नाइट्रस आक्साइड, 0.4 किग्रा कार्बन मोनो आक्साइड, 3.83 किग्रा नाइट्रस आक्साइड, 0.4 किग्रा सल्फर डाइ आक्साइड, 2.7 किग्रा मीथेन और 200 किग्रा राख घुल जाती है।

खेती पर मारः– किसानों के पराली जलाने से भूमि की उपजाऊ क्षमता लगातार घट रही है। इस कारण भूमि में 80 प्रतिशत तक नाइट्रोजन, सल्फर और 20 प्रतिशत तक अन्य पोशक तत्वों में कमी आई है। मित्र कीट नश्ट होने से शत्रु कीटों का प्रकोप बढ़ा है। जिससे फसलों में तरह–तरह की बीमारियां हो रही हैं। मिट्टी ऊपरी परत कड़ी होने से जलधारण क्षमता में कमी आई है।

बढ़ने लगे मरीजः– प्रदूषित कण शरीर के अन्दर जाकर खांसी को बढ़ाते हैं। अस्थमा, डायबिटीज के मरीजों को सांस लेना दूभर हो जाता है। फेफड़ों में सूजन सहित टॉन्सिल्स, इन्फेक्शन, निमोनिया और हार्ट की बिमारियाँ जन्म लेने लगती हैं। खासकर बच्चों और बुजुर्गों को ज्यादा परेशानी होती है। फसल अवशेशों को जलाने से स्वास्थ्य सम्बन्धित अन्य समस्याए जैसे– थायराइड हार्मोन स्तर में वृद्धि परिवर्तन होता है। गर्भाअवस्था के दौरान बच्चे के दिमागी स्तर पर दुश्प्रभाव पड़ता है। इस प्रदुशण से पुरूषों में टेस्टोस्टेरॉनहार्मोन का स्तर घटता है। स्त्रियों में प्रजनन सम्बन्धी रोग बढ़ जाते हैं। रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है।

रसायन डायआवसिन– फसल अवशेशों में कीटनाशकों के अवशेश होने के कारण इसको जलाने से विशैला रसायन डायआवसिन हवा में घुल जाता है। फसल की कटाई के समय एवं कटाई के उपरान्त अवशेशों को जलाने से हवा में विशैले डायआवसिन की मात्रा 33–270 गुना बढ़ जाती है। डायआवसिन का प्रभाव वातावरण में दीर्घ समय तक रहता है, जो मनुश्य एवं पशुओं की त्वचा पर जमा हो जाता है, और उससे खतरनाक बीमारियाँ होती हैं।

स्वच्छ वातावरण हेतु चिन्ताजनकः–

- यह वायु प्रदुशण वातावरण की निचली सतह पर एकत्रित होता है, जिसका सीधा प्रभाव आबादी पर होता है।
- इस प्रकार का प्रदूशण दूरगामी इलाकों एवं विस्तृत क्षेत्रों में हवा द्वारा फैलता है। जिसका निमन्त्रण हमारे वश में नहीं है।
- इस प्रकार का प्रदूशण ग्रीन हाउस गैस उत्पादन कर वैश्विक मौसम परिवर्तन का कारण बनता है।
- फसल अवशेष जलाने से वातावरण में खतरनाक रसायन घुल जाता है, जो एक कैंसरकारी प्रदूषण है।

मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव– फसल अवशेशों को जलाने के कारण मृदाताप में वृद्धि होती है। जिसके फलस्वरूप मृदा सतह सख्त हो जाती है एवं मृदा की सघनता में वृद्धि होती है, साथ ही मृदा जल धारण क्षमता में कमी आती है तथा मृदा में वायु–संचरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा पर्यावरण पर प्रभाव– फसल अवशेशों को जलाने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है, और फसल अवशेश जलाए जाने से मिट्टी की सर्वाधिक सक्रिय 15 सेमी तक की परत में सभी प्रकार के लाभदायक सूक्ष्म जीवियों का नाश हो जाता है। फसल अवशेश जलाने से केचुएं, मकड़ी जैसे मित्र कीटों की संख्या कम हो जाती है, इससे हानिकारक कीटों का प्राकृतिक नियन्त्रण नहीं हो पाता, फलस्वरूप महंगे कीटनाशकों का इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। इससे खेती की लागत बढ़ती है।

मृदा में उपस्थित पोशक तत्वों की कमीः फसल अवशेशों को जलाने के कारण मिट्टी में पाये जाने वाले पोशक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सल्फर नश्ट हो जाते हैं, इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। कृशि वैज्ञानिकों ने एक अनुभान के अनुसार बताया कि एक टन धान के पुआल को

कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटवा, आजमगढ़
ई–मेल : randhirnayak05@gmail.com

जलाने से 5.5 किग्रा नाइट्रोजन, 2.3 किग्रा फास्फोरस, 25 किग्रा पोटैशियम तथा 1.2 किग्रा सल्फर एवं 400 किग्रा कार्बनिक, पदार्थ नश्ट होती है।

यातायात पर दुश्प्रभावः– फसल अवशेशों के जलाने से उत्पन्न छोटे–छोटे कणों के पास जब ठण्डी हवा पहुंचती है तो कण उसमें फस जाते हैं तथा धुन्ध का निर्माण करते हैं। परिणाम स्वरूप सभी तरह का यातायात प्रभावित होता है, जिसकी परणिति कई प्रकार की दुर्घटनाओं के रूप में सामने आती हैं।

फसल अवशेष प्रबन्धन एकीकृत पोशक तत्व प्रबंधन का मुख्य घटक है।

भारत वर्ष में उत्पादित फसल अवशेश की कुल मात्रा का 27 प्रतिशत गेहूँ तथा धान का लगभग 51 प्रतिशत है। इन अवशेशों का 1/3 भाग जानवरों को खिलाने व अन्य प्रयोजन के लिये उपयोग किया जाता है। फसल उत्पादन प्रणालियों में इन अवशेषों को रिसाइक्लिंग करने की भारी सम्भावना है। फसल अवशेशों की उपलब्धता एवं उसमें पोशक तत्वों का स्तर सारिणी–1 में वर्णित है–

स्त्रोत सरकार 1999 फसल अवशेष रिसाइक्लिंग व मृदा स्वास्थ्य–

औसतन प्रतिवर्श 600 से 700 मिलियन टन फसल अवशेश उत्पादित होता है। धान–गेहूँ प्रणाली में 10 टन/हे0 जैवभार उत्पादन हेतु लगभग 500 किग्रा0 पोशक तत्व मृदा से अवशोशित होता है। फसल द्वारा मृदा से अवशोशित पोशक तत्व का 25 प्रतिशत नाइट्रोजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत सल्फर एवं 75 प्रतिशत पोटाश जड़, तना व पत्ती में समग्रहीत होता है। विभिन्न फसल अवशेशों में अवशोशित पोशक तत्व की उपलब्धता के अनुसार अपघटन के बाद मिट्टी में उपलब्धता बढ़ती है। (सारिणी–2) है।

उपरोक्त सारणी को देखकर हम स्पष्ट रूप से अनुमान लगा सकते हैं कि कितनी अधिक मात्रा में मिट्टी के आवश्यक पोशक तत्वों की पूर्ति फसलों के विभिन्न अवशेशों को इन–सीटू व एक्स–सीटू प्रबन्ध करके कर सकते हैं। अवशेशों को एक्स–सीटू प्रबन्धन के तहत वर्मी/नाडेप/वेस्ट डिकम्पोजर द्वारा कम्पोस्ट खाद तैयार कर खेत में डालना भी लाभप्रद होता है।

क्रमांक	फसल अवशेष	नत्रजन (%)	फास्फोरस (%)	पोटाश (%)
1	गेहूँ का भूसा	0.53	0.10	1.10
2	गन्ने की पत्तियां	0.35	0.10	0.60
3	गन्ने की खोई	2.25	0.12	–
4	धान का पूआल	0.36	0.08	0.70
5	धान की भूसी	0.40	0.25	0.40
6	राई सरसो का तना	0.57	0.28	1.40
7	मक्का का डंठल	0.47	0.57	1.65
8	बाजरे का डंठल	0.65	0.75	2.50
9	मूंगफली का छिलका	0.70	0.48	1.40
10	आलू का गवा/तना	0.52	0.09	0.85
11	मटर की सूखी पत्तियां	0.35	0.12	0.36
12	रेडी/करंज की सूखी पत्तियां	2.65	0.41	2.42
13	वृक्षो की सूखी पत्तियां	1.50	0.45	2.50

सारिणी 2– फसलों के विभिन्न अवशेषों में नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा।

प्रदेश	फसल अवशेष उपलब्धता (मि0टन)			पुनः चक्रण हेतु अवशेष उपलब्धता	पोषक तत्व (एन0पी0के0) सामर्थ्य		
	धान	गेहूँ	कुल		कुल	सापेक्ष पुनः चक्रण हेतु उपलब्धता	रसायनिक प्रतिस्थापन मान
पंजाब	10.0	18.2	28.2	9.40	0.462	0.154	0.077
हरियाणा	2.5	9.7	12.2	4.07	0.194	0.065	0.032
उ0 प्रदेश	14.0	27.5	41.5	13.83	0.677	0.226	0.113
बिहार	9.6	5.3	14.9	4.97	0.257	0.086	0.043
पं0 बंगाल	16.7	0.1	16.8	5.60	0.308	0.103	0.051
कुल	52.8	60.8	113.6	37.87	1.898	0.634	0.316

सारिणी 1– धान–गेहूँ फसल अवशेषों की उपलब्धता एवं उनमें पोशक तत्वों का स्तर (मिलियनटन)

<u>फसल अवशेष के इन–सीटू प्रबन्धन हेतु कृषि मशीनीकरण–</u>

फसल अवशेषों के प्रबन्धन के लिये सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की मशीनें जिनमें रोटावेटर, हैप्पीसीडर, मतचर, कटर कम स्प्रेडर, जीरो टिल सीड कम फर्टीड्रिल, रिवर्सेबुल यम.बी. प्लाऊ, शर्व मास्टर आदि कृशि मशीनीकरण को प्रोत्साहन योजना चलाई जा रही है। पंजाब, हरियाणा, उ0प्र0 और दिल्ली के सरकारों ने वायु प्रदुशण को संरक्षित करने के लिये 2018–19 से 2019–20 की अवधि के लिये फसल अवशेश के इन–सीटू प्रबन्ध के लिए आवश्यक मशीनरी को सब्सिडी देने के लिए एक विशेश योजना मंजूर की है। यह योजना केन्द्रिय क्षेत्र (100 प्रतिशत केन्द्रिय शेयर) कृशि और किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा लागू की जा रही है। केन्द्रिय निधि से कुल रू0 1151.80 करोड़ (2018–19 में 591.65 करोड़ रू0 और 2019–20 में 560.15 करोड़ रू0) का प्राविधान किया गया है।

<u>फसल अवशेष प्रबन्धन की रणनीति–</u>

1. पुनर्चक्रण/खेतो के अन्दर सस्यावशेष प्रबन्धन –

फसल की कटाई के बाद खेत में बचे अवशेश, घास, पत्तियाँ व ढूंढ आदि को सड़ाने के तिथि किसान आई फसल को काटने के पश्चात् 20–25

किग्रा0 नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़ककर कल्टीवेटर या रोलवेटर से काटकर मिट्टी में मिला देना चाहिए, इस प्रकार अवशेश खेत में विघटित होना प्रारम्भ कर देंगे तथा लगभग एक माह में स्वयं सड़कर आगे बोई जाने वाली फसल को पोशक तत्व प्रदान कर देंगे, क्योंकि कटाई के पश्चात् दी गई नाइट्रोजन अवशेशों में सड़न की क्रिया को तेजकर देती है। अगर फसल अवशेश खेत में ही पड़े रहे तो फसल बोने पर नई फसल के पौधे छोटे रहते हैं और पीले पड़ जाते हैं, क्योंकि उस समय अवशेशों के सड़ाव जीवाणु भूमि की नाइट्रोजन का उपयोग कर लेते हैं तथा प्रारम्भ में फसल पीली पड़ जाती है। अतः फसल अवशेशों का प्रबन्धन करना अत्यन्त आवश्यक है तभी हम अपनी जमीन में जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर जमीन को खेती योग्य सुरक्षित रख सकते हैं।

2. वेस्ट डिकम्पोजर द्वारा अवषेश/कचरा प्रबन्धन–

वेस्ट डिकम्पोजर लाभकारी सूक्ष्म जीवों का एक समूह है, जो कृशि, प्शु और रसोई आदि से उत्पन्न सभी प्रकार के कचरे की 40 दिनों के भीतर खाद बनाकर उपयोग करने योग्य रूप में परिवर्तित करने में सक्षम है। वेस्ट डिकम्पोजर जैव उर्वरक, वायो कन्ट्रोल और साथ ही मिट्टी स्वास्थ्य पुनखद्धारक के रूप में काम करता है। यह अन्य प्रकार से भी, जैसे कि, सभी प्रकार के कृशि और वागवानी फसलों में रोगों से लड़ने के लिये, जैव कचरे की शीघ्र कम्पोस्टिंग, ड्रिप सिंचाई, पत्तों पर छिड़कन के लिये व जैविक कीटनाशक के रूप में तथा फसल के अवशेशों की कम्पोस्टिंग के साथ–साथ बीज उपचार के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है।

एक बोतल बेस्ट डीकम्पोजर से और अधिक वेस्ट डीकंपोजर का निर्माण–वेस्ट डीकंपोजर किसानों को एक छोटी से बोतल में दिया जाता है और वे खुद किसी भी अत्याधुनिक तकनीक का उपयोग किये बिना इससे और अधिक वेस्ट डीकंपोजर तैयार कर सकते हैं।

बनाने का तरीका–

- दो किग्रा गुड़ लेकर इसे 200 ली0 पानी भरे प्लास्टिक ड्रम में मिला लें।
- अब वेस्ट डिकंपोजर की बोतल में उपस्थित सामग्री को गुड़ वाले प्लास्टिक ड्रम में डाल दें।
- ड्रम में डिकंपोजर की अच्छी तरह खोलने के लिये एक लकड़ी की छड़ी से इसे ठीक तरह मिलाए।
- ड्रम को ढ़क दे और प्रतिदिन इसे एक–दो बार हिला दें।
- पाँच दिनों बाद ड्रम में मौजूद घोल की उपरी सतह झागदार, और घोल दूधिया हो जायेगा।

नोट– किसान उपर्युक्त घोल से बार–बार वेस्ट डील पोजर का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए 20 लीटर वेस्ट डीकंपोजर घोल का दो किग्रा गुड़ के साथ ड्रम में 200 लीटर पानी में मिला दें। फिर से यह सात दिनों में तैयार हो जायेगा।

शीघ्र कम्पोस्टिंग–

एक बोतल द्वारा वेस्ट डीकंपोजर से आगे बनाये गये डीकंपोजर का उपयोग जैव कचरे को विघटित करके जैविक खाद तैयार करने के लिये किया जाता है।

- एक टन जैव कचरे, जैसे कृशि, रसोई, गाय का गोबर आदि थी 18–20 सेमी मोटी परत जमीन पर ढेर कर दी जाती है।
- वेस्ट डील फेजर के घोल के साथ कचरे को गीला कर दें।
- जैव कचरे थी एक और 18–20 सेमी मोटी परत बनाई जाती है और वेस्ट डिंक फेजर के घोल से दोबारा गीला कर देते है।
- जब तक कि 30–45 सेमी की मोटी परत न बन जाये, ऊपर की प्रक्रिया दोहराते रहे।
- समान कम्पोस्टिंग के लिये हर साल दिनों के अंतराल पर ढ़ेर के उलट–पलट करते रहें और इस ढ़ेर पर हर बार वेस्ट डींक फेजर का घोल डालते रहें।
- कम्पोस्सिंग की पूरी अवधि के दौरान 60: नमी बनाये रखें। यदि आवश्यक हो तो और घोल मिला दें।
- कम्पोस्ट खाद 40 दिनों उपरान्त उपयोग करने के लिये तैयार होती है।

खेत में फसल अवशेशों की कम्पोस्टिंग–

- फसल कटाई के बाद पानी भरे खेत में फसल के डंठल पर घोल का छिड़काव करने के बाद कुछ दिनों तक छोड़ दिया जाता है।
- जल की कमी वाले खेतों में फसल के अवशेशों पर डींक फेजर घोल छिड़कते है और जब किसान खेत में सिंचाई करता है, तो विघटन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।
- 200 ली0 घोल को एक एकड़ खेत में फसल अवशेशों पर इन–सिटू कम्पोस्टिंग के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) निर्माण में उपयोग–

केंचुआ खाद निर्माण हेतु फसल अवशेशों के विधिवत गोबर के साथ उचित मात्रा में वैज्ञानिक विधि से मिलाकर केंचुआ खाद बनायी जाती है, ताकि अवशेशों को खाकर केंचुए गुणवत्तापूर्ण केंचुआ खाद बन सके।

4. नाडेप कम्पोस्ट का निर्माण–

फसल अवशेशों से नाडेप कम्पोस्ट बनाने हेतु 10′ लम्बी, 6′ चौड़ा तथा 3′ ऊंचा ईट का जालीदार ढांचा। टैंक बनाकर निचली हिस्से के फर्श बना देते है। टैंक में सर्वप्रथम 6′′ मोटी अवशेशों की परत बिछाते है। उस पर 0.5 सेमी मिट्टी की परत डालते है तथा इसमें 5 किग्रा0 गोबर को 100 ली0 पानी में घोलकर अवशेशों की परत को भिगोते है। यह प्रक्रिया अपनाकर टैंक को उपर तक भर देते है। 100–110 दिनों में उपयोग हेतु लगभग 35 कु./टैंक खाद तैयार हो जाती है।

5. जैविक खेती में उपयोग–

आज जैविक उत्पादों के प्रति आकर्शण देश दुनिया में तेजी से बढ़ रहा है, जैविक उत्पादन में फसल अवशेश टिकाऊ पादप पोशण व्यवस्था के सुनिश्चित करते है।

6. जैव उर्वरक निर्माण में उपयोग–

अनेक फसल अवशेशों के विघटित कराकर उनसे जैव उर्वरकों के बनाने में मदद मिलती है। जैसे गन्ने से जूस निकालने के बाद अवशेश पर जैविक इनाकुलोशन कराकर जैव उर्वरक निर्मित किये जाते है।

7. फसलों में मल्च के रूप में विघाया जाना–

बिछावन या समिश्रण एक अन्य लाभदायक अवशेश प्रबन्धन का तरीका है। इसके अनेक फायदे है। जैसे– मृदा की उत्पादकता में टिकाऊपन पोशक तत्व उपलब्धता, मृदा ताप नियन्त्रित रहने के साथ–साथ मृदा की भौतिक दशा में सुधार होता है, इसलिये ऐसे क्षेत्रों जहा वाश्पोत्सर्जन तेज होता है या वहा पानी की उपलब्धता कम होती है। वहां भूमि संरक्षण हेतु गेहूं की पत्तियां, पुआता आदि बिछाया जाना आवश्यक होता है।

8. मशरूम उत्पादन में उपयोग–

फसल अवशेष खासकर धान का पुआता व गेहूं का भूसा मशरूम उत्पादन हेतु अति उपयोगी है। इसके प्रयोग के बिना मशरूम उत्पादन अति महंगा साबित होता है।

स्थाई मृदा स्वास्थ्य का आधार–फसल अवशेश का उचित प्रबन्धन–

यदि किसान उपलब्ध अवशेशों को जलाने की बजाए उनको वापस भूमि में मिला देते है तो वह स्थाई मृदा स्वास्थ्य को विधिवत मजबूत करते है।

कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि–

कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोशक तत्व फसलों के उपलब्ध हो जाते है तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किये गये प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुना अन्य फसल अवशेश होते है। ये खेत में सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते है। जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, पोशक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है, क्योंकि फसल अवशेश से बने खाद पोशक–तत्वों का भण्डार होता है। फसल अवशेशों में लगभग सभी आवश्यक पोशक तत्वों के साथ नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है, जो कि एक प्रमुख पोशक तत्व है।

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार–

मृदा में फसल अवशेशों के मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जल धारण क्षमता एवं मृदा में वायु संचरण में वृद्धि होती है। भूमि से पानी के भाप बनाकर उड़ने में कमी आती है।

मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार–

फसल अवशेशों के मृदा में मिलाने से मृदा के रसायनिक गण जैसे उपलब्ध पोशक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है तथा फसल के पोशक तत्व अधिक मात्रा में मिलते हैं।

मृदा तापमान में सुधार–

फसल अवशेश भूमि के तापमान के बनाये रखते है। गर्मियों में छायांकन प्रभाव के कारण तापमान कम होता है तथा सर्दियों में गर्मी का प्रवाह ऊपर की तरफ कम होती है, जिससे तापमान बढ़ता है।

फसल उत्पादकता में वृद्धि–

भूमि में खरपतवारों के अंकुरण व बढ़वार में कमी होती है। फसल अवशेशों के मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है।

निष्कर्ष–

फसल अवशेशों के जलाने से इनसे मिलने वाले लाभों से तो किसान वंचित रह जाने है, वहीं भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने वाले जीवाणु आग से जल जाते है। फसल अवशेशों के जलाने से नुकसान ही है, कोई फायदा नही है।

इसलिये इनको जलाना नही चाहिए।

कविता-अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस

कब तक तू रहेगी मौन

अरुणिमा बहादुर खरे

कब तक तू रहेगी मौन,
तेरा मौन तोड़ेगा कौन,
तू बनी रही जो अहिल्या,
तो राम बनेगा कौन,
उद्धार तेरा करेगा कौन,
रावण यहाँ पग पग पर है,
पर राम कौन ये जाने कौन,
मत पुकार अब कृष्णा पांचाली
तेरी वाणी सुनेगा कौन,
कालनेमि का युग हैं ये,
छलिया हैं सब तेरा कौन
तू खुद उठ,बढ़ा कदम,

जीत आज तू संग्राम
तू शक्ति,तू जगदम्बा,
कर स्वयं असुरो का मर्दन,
तू सौम्य है कमजोर नही,
जीत सकती है हर जंग नई,
लड़ फिर अपना युद्ध,
हो हर रावण पर क्रुद्ध,
जला मशाल,उठा तलवार
जीत फिर तू हर युद्ध,
तेरे सिवा तेरा है कौन,
ये बुझ सकता तेरा मौन,
प्रहार होता हर नारी पर,

जब कष्ट कोई नारी सहती हैं,
निर्भया की हर पीड़ा पर
हर एक नारी रोती है,
तो जुटाओ फिर सब एक संकल्प,
मिटाना हैं हर दुर्जन का दम्भ,
न सिसकने देंगे किसी नारी को,
जगायेंगे हर एक प्राणी को,
तो उठ अभी और ले दहाड़,
तोड़ हर बुराई का पहाड़,
बना एक नया युग,
सम्मान समानता का युग।।

1/5 A, Madhokunj, M.Z.Hasan Road, Old Katra, Prayagraj-211002 Mob.: 9369505944

खेती - बाड़ी

पपीते की फसल के प्रमुख रोग एवं उनके निदान

❑ डॉ0 आर.एस. सेंगर[1], डॉ0 रेशू चौधरी[2] एवं डॉ0 डी.के. श्रीवास्तव[3]

भारत में अधिकांश हिस्सों में पपीते की खेती होती है। इस फल को कच्चा और पकाकर, दोनों तरीके से उपयोग में लाया जाता है। इस फल में विटामिन ए की मात्रा अच्छी पाई जाती है, वहीं पर्याप्त मात्रा में इसमें पानी भी होता है, जो त्वचा को नम बनाए रखने में सहायक है। अगर इसकी उन्नत तरीके से खेती की जाए तो कम लागत पर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इतना ही नहीं, इसकी खेती के साथ इसकी अंतःवर्तीय फसलों को भी बोया जा सकता है, जिनमें दलहनी फसल जैसे मटर, मैथी, चना, फ्रेंचबीन व सोयाबीन आदि हैं। अब इसकी खेती पूरे भारत में की जाने लगी है। सालों–साल आसनी से मिलने वाला पपीता बहुत ही फायदेमंद फल है और आज के समय में पपीता ज्यादातर लोगों की पसंद भी है क्योंकि यह ऐसा गुणकारी फल है जो पेट की अनेक समस्याओं को दूर करता है। इस की खेती करना भी आसान है। कम समय में अच्छा–खासा मुनाफा देने वाली फसल हैं। शौकिया तौर पर लोग सालों–साल अपने घर के बगीचे में भी लगाते आए हैं या खाली पड़ी आस–पास की जगह पर इस को उगा कर फायदा लेते रहे हैं।

आज के दौर में अनेक किसान पपीते की खेती कर के अपने आप को प्रगतिशील किसानों की दौड़ में शामिल कर चुके हैं क्योंकि इसे उगाना आसान, बेचना आसान और मुनाफा ज्यादा है। सघन बागबानी पपीता उत्पादकों के लिए एक नई विधि है, जिसे अपना कर वे उत्पादकता और अपनी आमदनी में इजाफा कर सकते हैं। इस विधि का इस्तेमाल पपीता उत्पादकों द्वारा किया जाने लगा है, लेकिन अभी भी अनेक पपीता उगाने वाले किसान इस विधि से अनजान हैं। सघन बागबानी तकनीक में पौधो की प्रति इकाई संख्या बढ़ा कर जमीन का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जाता है जिस से अधिक पैदावार ली जा सके। पपीते की कुछ किस्मों के पौधे बौने होते हैं, जो सघन बागबानी के लिए उत्तम हैं। दिन प्रतिदिन खेती की जोत कम होती जा रही है। ऐसे में पपीते की सघन बागबानी पैदावार बढ़ाने के लिए एक खास तरीका है। पपीते का इस्तेमाल कच्चे व पके फल के रूप में किया जाता है। इस के अलावा इस से मिलने वाला पपेन का भी इस्तेमाल अनेक औद्योगिक कामों में किया जाता है। खेत में यदि "ड्रिप इरिगेशन" यानी बूंदबूंद सिंचाई की विधि से पानी दिया जाता है तो इस से पानी सीधे पौधे की जड़ों में जाता है और बर्बाद नहीं होता। इस पद्धति से खेती करने पर सरकार आम किसानों को 50 फीसदी अनुदान और एसटी और एससी, लघु, सीमांत और महिला किसानों को 50 फीसदी अनुदान देती है। यदि हम सामान्य विधि से पुरे खेत में पानी देते हैं, तो पानी की मात्रा ज्यादा लगती हैं परन्तु वही हम यदि बूंद–बूंद सिचाई से सिर्फ पौधो के जड़ो में पानी देते हैं तो इस विधि से हम तकरीबन 85 फीसदी पानी की बचत कर सकते हैं।

पपीता में अनेक कीट एवं रोगों का प्रकोप होता है, लेकिन पपीते के बागों में कीटों की अपेक्षा, रोगों से हानी अधिक होती है। हमारे देश में पपीते की फसलो मुख्यतः विषाणु रोग, फफूंदी जनित रोग और फलों के फफूंदी जनित रोग वर्ग केरोग आर्थिक स्तर से अधिक हानी पहुंचाते हैं। कीट पपीते को बहुत कम हानी पहुंचाते है, परन्तु माहूँ, सफेद मक्खी और लाला मकड़ी नुकसान पहुँचाने वाले प्रमुख कीट है।

यदि कृषक बन्धु पपीते की बागवानी से अधिकतम उत्पादन लेना चाहते है, तो समय रहते इन सबकी रोकथाम आवश्यक हैं।

इस लेख में बागवान बन्धुओं के लिए पपीते के प्रमुख कीट एवं रोग उनके लक्षण और रोकथाम की जानकारी का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

पपीते की खेती के लिए उपयुक्त जलवायु

इसकी खेती गर्म नमी युक्त जलवायु में की जा सकती है। इसे अधिकतम 38 से 44 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान पर उगाया जा सकता है। इसके साथ ही न्यूनतम 5 डिग्री सेल्सियस से तापमान कम नहीं होना चाहिए। पपीते को लू और पाले से भी बहुत नुकसान होता है।

पपीते की खेती का उचित समय

इसकी खेती साल के बारहों महीने की जा सकती है, लेकिन फरवरी, मार्च व अक्टूबर के मध्य का समय उपयुक्तमाना जाता है। इन महीनों में उगाए गए पपीते की बढ़वार काफी अच्छी होती है।

पपीते की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी

पपीता बहुत ही जल्दी बढने वाला पेड़ है, इसलिए इसे साधारण ज़मीन, थोड़ी गर्मी और अच्छी धूप मिलना अच्छा होता है। इसकी खेती के लिए 6.5–7.5 पी.एच मान वाली हल्की दोमट या दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है, जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो।

पपीते की कुछ उन्नत किस्में

1. पूसा डेलीसियस
2. पूसा ड्वार्फ

[1]सरदार वल्लभभाई पटेल यूनिवर्सिटी ऑफ़ एग्रीकल्चर एंड टेक्नोलॉजी, मेरठ
[2]स्वामी विवेकानंद सुभारती यूनिवर्सिटी, मेरठ
[3]उ0प्र0 विज्ञापन एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ
ई–मेल : sengarbiotech7@gmail.com

3. कोयंबटूर 3
4. कोयंबटूर 6
5. कोयंबटूर 7
6. अर्का प्रभात
7. सूर्या
8. रैड लेडी

पपीते की फसल में विषाणु रोग प्रबंधन

बागवानी में अधिक लाभ की दृष्टि से पपीते की फसल अति लाभकारी है किंतु पपीते की फसल में विषाणु एक प्रमुख समस्या है जिसके जानकारी के अभाव में किसानों को बहुत आर्थिक क्षति उठाना पड़ता है यदि समय रहते इनका प्रबंधन न किया गया तो किसान भाइयों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

रिंग स्पॉट वायरस –

इस रोग का कारण विषाणु है जो कि माहू द्वारा फैलता है जिसके कारण पौधे की वृद्धि रुक जाती है पत्ती कटी फटी हो जाती है एवं हर गाठ पर कटे–फटे पत्ते निकलते हैं। पत्ती, तनो एवं फलों पर गोलाकार धब्बे बन जाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप फल एवं पौध वृद्धि प्रभावित होती है। इस रोग के गंभीर आक्रमण की स्थिति में 50–60 प्रतिशत तक हानि हो जाती है।

नियंत्रण

1) बागों में साफ सफाई रखें
2) शाम को खेत में धुआं करें
3) रोग ग्रस्त पौधे को उखाड़ कर जला दें
4) पपीते के बगीचे के आसपास कद्दू वर्गीय कुल के पौधे नहीं होने चाहिए
5) नीम सीड कर्नल अर्क या नीम के तेल का प्रयोग 10 से 15 दिन के अंतराल पर करते रहें
6) माहू के नियंत्रण के लिए डाईमेथोएट दवा 0.1þ प्रयोग करें
7) वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद बाग लगाने पर यह रोग कम दिखाई देता है

लीफकर्ल विषाणु रोग –

यह भी विषाणु जनित रोग है जो कि सफेद मक्खी के द्वारा फैलता है जिस कारण पत्तियाँ मुड़ जाती है इस रोग से 70–80 प्रतिषत तक नुकसान हो जाता है।

नियंत्रण :

1) स्वस्थ पौधो का रोपण करें
2) शाम को खेत के आसपास धुआं करें
3) रोगी पौधों को उखाड़कर खेत से दूर गढढे में दबाकर नष्ट करें
4) सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु 0–2 þ नीम का तेल 5–7 दिन के अंतराल पर या इमिडाक्लोपरिड कीटनाशक 0.1þ का प्रयोग करें।
5) फसल रोपण से पूर्व अधिक जानकारी हेतु कृषि विज्ञान केंद्र हस्तिनापुर, मेरठ से संपर्क करें

मात्रा:

पाउडरी मिल्ड्यू रोग की रोकथाम के लिए हेक्सास्टॉप की 300 ग्राम/एकड़ मात्रा उपयुक्त रहती है.

पपीते का वलय–चित्ती:

पपीते के वलय–चित्ती रोग को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे कि पपीते की मोजेक, विकृति मोजेक, वलय–चित्ती (पपाया रिंग स्पॉट) पत्तियों का संकरा व पतला होना, पर्ण कुंचन तथा विकृति पर्ण आदि। पौधों में यह रोग उसकी किसी भी अवस्था पर लग सकता है, परन्तु एक वर्ष पुराने पौधे पर रोग लगने की अधिक संभावना रहती है। रोग के लक्षण सबसे ऊपर की मुलायम पत्तियों पर दिखायी देते हैं। रोगी पत्तियाँ चितकबरी एवं आकार में छोटी हो जाती हैं। पत्तियों की सतह खुरदरी हो जाती है, तथा इन पर गहरे हरे रंग के फफोले बन जाते हैं। पर्णवृत छोटा हो जाता है तथा पेड़ के ऊपर की पत्तियाँ खड़ी होती हैं। पत्तियों का आकार अक्सर प्रतान (टेन्ड्रिल) के अनुरूप हो जाता है। पौधों में नयी निकलने वाली पत्तियों पर पीला मोजेक तथा गहरे हरे रंग के क्षेत्र बनते हैं। ऐसी पतियाँ नीचे की तरफ ऐंठ जाती हैं तथा उनका आकार धागे के समान हो जाता है। पर्णवृत एवं तनों पर गहरे रंग के धब्बे और लम्बी धारियाँ दिखायी देती हैं। फलों पर गोल जलीय धब्बे बनते हैं। ये धब्बे फल पकने के समय भूरे रंग के हो जाते है। इन रोग के कारण रोगी पौधों में लैटेक्स तथा शर्करा की मात्रा स्वस्थ्य पौधों की अपेक्षा काफी कम हो जाती है।

रोग के कारण:

यह रोग एक विषाणु द्वारा होता है जिसे पपीते का वलय चित्ती विषाणु कहते हैं। यह विषाणु पपीते के पौधों तथा अन्य पौधों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोगी पौधों से स्वस्थ्य पौधों पर विषाणु का संचरण रोगवाहक कीटों द्वारा होता है जिनमें से ऐफिस गोसिपाई और माइजस पर्सिकी रोगवाहक का काम करती है। इसके अलावा रोग का फैलाव, अमरबेल तथा पक्षियों द्वारा होता है ।

पर्ण–कुंचन:

पर्ण–कुंचन (लीफ कर्ल) रोग के लक्षण केवल पत्तियों पर दिखायी पड़ते हैं। रोगी पत्तियाँ छोटी एवं क्षुर्रीदार हो जाती हैं। पत्तियों का विकृत होना एवं इनकी शिराओं का रंग पीला पड़ जाना रोग के सामान्य लक्षण हैं। रोगी पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं और फलस्वरूप ये उल्टे प्याले के अनुरूप दिखायी पड़ती हैं। यह पर्ण कुंचन रोग का विशेष लक्षण है। पत्तियाँ मोटी, भंगुर और ऊपरी सतह पर अतिवृद्धि के कारण खुरदरी हो जाती हैं। रोगी पौधों में फूल कम आते हैं। रोग की तीव्रता में पत्तियाँ गिर जाती हैं और पौधे की बढ़वार रूक जाती है।

रोग के कारण:

यह रोग पपीता पर्ण कुंचन विषाणु के कारण होता है। पपीते के पेड़ स्वभावतः बहुवर्षी होते हैं, अतः इस रोग के विषाणु इन पर सरलता पूर्वक उत्तरजीवी बने रहते हैं। बगीचों में इस रोग का फैलाव रोगवाहक सफेद मक्खी बेमिसिया टैबेकाई के द्वारा होता है। यह मक्खी रोगी पत्तियों से रस–शोषण करते समय विषाणुओं को भी प्राप्त कर लेती है और स्वस्थ्य पत्तियों से रस–शोषण करते समय उनमें विषाणुओं को संचरित कर देती है।

मंद मोजेक:

इस रोग का विशिष्ट लक्षण पत्तियों का हरित कर्बुरण है, जिसमें पत्तियाँ विकृत वलय चित्ती रोग की भांति विकृत नहीं होती

है। इस रोग के शेष लक्षण पपीते के वलय चित्ती रोग के लक्षण से काफी मिलते जुलते हैं। यह रोग पपीता मोजेक विषाणु द्वारा होता है। यह विषाणु रस–संचरणशील है। यह विषाणु भी विकृति वलय चित्ती विषाणु की भांति ही पेड़ तथा अन्य परपोषियों पर उत्तरजीवी बना रहता है । रोग का फैलाव रोगवाहक कीट माहूं द्वारा होता है।

रोग प्रबंध

- विषाणु जनित रोगों की रोग प्रबंध संबधित समुचित जानकारी अभी तक ज्ञात नहीं हो पायी है । अतः निम्नलिखित उपायों को अपनाकर रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता हैः
- बागों की सफाई रखनी चाहिए तथा रोगी पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए ।
- नये बाग लगाने के लिए स्वस्थ्य तथा रोगरहित पौधे को चुनना चाहिए।
- रोगग्रस्त पौधे किसी भी उपचार से स्वस्थ्य नहीं हो सकते हैं। अतः इनको उखाड़कर जला देना चाहिए, अन्यथा ये विषाणु का एक स्थायी स्रोत हमेशा ही बने रहते हैं और साथ–साथ अन्य पौधों पर रोग का प्रसार भी होता रहता है।
- रोगवाहक कीटों की रोकथाम के लिए कीटनाशी दवा ऑक्सीमेथिल ओ. डिमेटान (मेटासिस्टॉक्स) 0.2 प्रतिशत घोल 10–12 दिन के अंतर पर छिड़काव करना चाहिए ।

पपीते के कवक जनित रोग

आद्र गलन (डैंपिंग ऑफ) : यह पौधशाला में लगने वाला गंभीर रोग है जिससे काफी हानि होती है इसका कारक कवक पीथियम एफैनिडरमेटम है जिसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है इस रोग में पौधे का तना प्रारंभिक अवस्था में ही गल जाता है और पौधा मुरझा कर गिर जाता है

नियंत्रण के उपायः

- पौधशाला में जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए एवं इसके लिए पौधशाला की ऊंचाई आसपास की सतह से ऊपर होनी चाहिए जिससे जल जमाव ना हो।
- नर्सरी की मिट्टी का उपचार फॉर्मेल्डिहाइड के 2.5þ घोल से करने के बाद 48 घंटे तक पॉलीथिन शीट से ढक देना चाहिए।
- बीज उपचार कार्बेंडाजिम अथवा मेटैलेक्सिल मैनकोज़ेब के मिश्रण से 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से करें पौधशाला में लक्षण दिखते ही मेटैलेक्सिल मैनकोज़ेब के मिश्रण का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी से छिड़काव करें।

तना तथा जड़ सड़न रोग (कॉलर रॉट):

पपीते में तना व जड़ गलन यानी कॉलर रॉट रोग में तने के निचले भाग के छाल पर जलीय चकत्ते बनते हैं जो बाद में बढ़कर तनो के चारों तरफ से घेर लेते हैं ऊपरी पत्तियां पीली हो जाती हैं और पत्तियां गिर जाती है रोगी पौधे में फल नहीं बनते हैं और यदि बन जाते हैं तो गिर पड़ते हैं तने के आधार पर जाने के कारण पूरा पौधा टूट कर गिर जाता है।

नियंत्रण के उपायः

- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंधन होना चाहिए।
- रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहिए और रोगी पौधे के स्थान पर दूसरे नए पौधे नहीं लगाने चाहिए।
- जून जुलाई और अगस्त के महीने में पौधों पर आधार से 50 सेंटीमीटर की ऊंचाई तक बोर्डो मिश्रण लगाने से रोग से बचा जा सकता है।
- यदि तने में धब्बे दिखाई देते हैं तो मेटैलेक्सिल मैनकोज़ेब का घोल बनाकर दो ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से पौधे के तने के पास मिट्टी में छिड़काव करना चाहिए।

फल सड़न रोग:

यह पपीते के फल का मुख्य रोग है इससे कई कवक कारक हैं जिसमें कोलेटोट्रिकम गलियोस्पोरयडस प्रमुख हैं अधपके एवं पके फल रोगी होते हैं इस रोग में फलों के ऊपर छोटे गोल गीले धब्बे बनते हैं बाद में यह बढ़कर आपस में मिल जाते हैं तथा इनका रंग भूरा या काला हो जाता है यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं

नियंत्रण के उपायः

- कॉपर ऑक्सिक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में या मैनकोज़ेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से रोग में कमी आती है।
- बगीचे में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
- रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर जला देना चाहिए और दूसरे नए पौधे नहीं लगाने चाहिए।

फफूंदी जनित रोग:

तना या पाद विगलन:

पपीते के इस रोग के सर्वप्रथम लक्षण भूमि सतह के पास के पौधे के तने पर जलीय दाग या चकते के रूप में प्रकट होते हैं। अनुकूल मौसम में ये जलीय दाग (चकते) आकार में बढ़कर तने के चारों ओर मेखला सी बना देते हैं। रोगी पौधे के ऊपर की पत्तियाँ मुरझा जाती हैं तथा उनका रंग पीला पड़ जाता है और ऐसी पत्तियाँ समय से पूर्व ही मर कर गिर जाती हैं। रोगी पौधों में फल नहीं लगते हैं यदि भाग्यवश फल बन भी गये तो पकने से पहले ही गिर जाते हैं। तने का रोगी स्थान कमजोर पड़ जाने के कारण पूरा पेड़ आधार से ही टूटकर गिर जाता है और ऐसे पौधों की अंत में मृत्यु हो जाती है। तना विगलन सामान्यतः दो से तीन वर्ष के पुराने पेड़ों में अधिक होता है। नये पौधे भी इस रोग से ग्रस्त होकर मर जाते हैं। पपीते की पौधशाला में आर्द्रपतन (डेपिंग ऑफ) के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रोग के कारण:

यह रोग पिथियम की अनेक जातियों द्वारा होते हैं जिनमें से पिथियम अफेनीडमेंटम तथा पिथियम डिबेरीएनम मुख्य है। इसके अलावा अन्य कवक राइजोक्टोनिया सोलेनाई भी यह रोग पैदा करते हैं। ये सभी कवक मुख्य रूप से मिट्टी

में ही पाये जाते हैं।

रोग प्रबंध:

- पपीते के बगीचों में जल–निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए जिससे बगीचे में पानी अधिक समय तक न रूका रहे ।
- रोगी पौधों को शीघ्र ही जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहिए। ऐसा करने से रोग के प्रसार में कमी आती है। इसलिए जहाँ से पौधे उखाड़े गये हों, उसी स्थान पर दूसरी पौध कदापि न लगाएं।
- आधार से 60 सें.मी. की ऊँचाई तक तनों पर बोडों पेस्ट (1:13) लगा देना चाहिए।
- भूमि सतह के पास तने के चारों तरफ बोडों मिश्रण (6:6:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), टाप्सीन–एम (0.1 प्रतिशत), का छिड्काव कम से कम तीन बार जून–जुलाई और अगस्त के मास में करना श्रेष्ठ रहता है ।

आर्द्रपतन रोग रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना चाहिए

- पौधशाला की क्यारी भूमि सतह से कुछ ऊपर उठी हुई होनी चाहिए। मृदा हल्की बलुई वाली होनी चाहिए। यदि मृदा कुछ भारी हो तो उसमें बालू या लकड़ी का बुरादा मिला देना चाहिए।जल–निकासी का उचित प्रबंध हो जिससे कि पौधशाला में अधिक देर तक पानी जमा न हो सके।
- बीज की बोआई घनी नहीं करनी चाहिए।
- पौधशाला की मृदा का उपचार निम्नलिखित विधियों से करना चाहिए
- थायरैम या कैप्टॉन 3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से पौधशाला की मिट्टी में मिला देना चाहिए ।
- एक भाग फार्मलीन में पचास भाग पानी मिलाकर बने घोल को पौधशाला की क्यारी में छिड़ककर मृदा को खूब अच्छी तरह भिगोएं तथा पॉलिथीन से ढक कर एक सप्ताह के लिए छोड़ देना चाहिए। यह कार्य बोआई के एक सप्ताह पूर्व करना चाहिए।मृदा का उपचार सौर ऊर्जा द्वारा किया जाता है। इस विधि से गर्मी के दिनों में सफेद पारदर्शी पॉलीथीन की मोटी (लगभग 200 गेज) चादर को मिट्टी की सतह पर बिछाकर लगभग 45–60 दिनों के लिए ढ़क दिया जाता है। ढकने के पूर्व यदि मृदा में नमी की कमी हो, तो **हल्की** सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे सौर ऊर्जा का विकिरण अधिक प्रभावकारी ढंग से हो सके। यह कार्य अप्रैल से जून के मध्य करना चाहिए। इस क्रिया में भूमि में उपस्थित सभी प्रकार के सूक्ष्मजीवों का नाश हो जाता है। साथ ही साथ घास–फूस भी जलकर नष्ट हो जाते हैं।
- बीज को बोते समय किसी कवकनाशी दवा से उपचारित कर लेना चाहिए। इसके लिए कैप्टॉन, थायरैम 2.5 ग्राम या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से मिलाकर उपचारित करें।
- पौध जमने के बाद थायरैम या कैप्टॉन 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पौधशाला की क्यारियों में डालने से पौध गलन की रोकथाम हो जाती है।
- सिंचाई हल्की और आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

पर्ण चित्ती:

पपीते पर विभिन्न प्रकार के पर्ण रोग आते हैं । अनुकूल वातावरण मिलने पर इन रोगों से पपीते के फलों की काफी हानि होती है।

सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती:

सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट) के लक्षण पत्ती व फलों पर दिखायी देते हैं। दिसम्बर–जनवरी के महीनों में पत्तियोंपर अनियमित आकार के हल्के भूरे रंग के दाग उत्पन्न होते है। दाग का मध्य भाग धूसर होता है। रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती है। प्रारंभ में फलों पर सूक्ष्म आकार के भूरे से काले रंग के दाग बनते हैं जो धीरे–धीरे बढ़कर लगभग 3 मि.मी. व्यास के हो जाते हैं । ये दाग फलों के ऊपरी सतह पर, जो थोड़ा सा उठा हुआ होता है जिसके नीचे के ऊतक फटे होते हैं जिससे फल खराब हो जाता है और फल बाजार के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं। पकते हुए फलों पर रोग के लक्षण काफी स्पष्ट हो जाते हैं।

रोग के कारण:

यह रोग सर्कोस्पोरा पपायी नामक कवक से होता है। यह कवक पौधों पर लगे पत्तियों के रोगी स्थानों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग विकास के लिए 20 से 27 डिग्री सेल्सियस तापमान व पत्तियों पर उपस्थित ओस या वर्षा का पानी अनुकूल होता है। रोग का फैलाव कीट व हवा द्वारा होता है।

रोग प्रबंधन:

रोगी पौधों के गिरे अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशी दवा जैसे, टाप्सीन एम 0.1 प्रतिशत, मैंकोजेब, 0.2 से 0.25 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर दुहरा देना चाहिए।

हेल्मिन्थोस्पोरियम पर्ण–चित्ती:

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे जलीय, पीताभ–भूरे रंग के धब्बों के रूप में उत्पन्न होते हैं। पुराने धब्बों का मध्य भाग धूसर होता है। रोग की तीव्रता में पर्णवृंत मुलायम होकर ढीला पड़ जाता है। रोगी पत्तियाँ नीचे गिर जाती है। इस प्रकार के लक्षण हेल्मिन्थोस्पोरियम रोस्ट्रेटम नामक कवक से होते है। इस रोग का शेष प्रबंध सर्कोस्पोरा पर्ण–चित्ती (लीफ स्पॉट) रोग के समान है।

श्यामवर्ण:

सामान्य रूप से इस रोग के लक्षण अधपके या पकते हुए फलों पर दिखायी पड़ते हैं। प्रारंभ में छोटे, गोल,जलीय तथा कुछ धंसे हुए धब्बों के रूप में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि पकते हुए फलों की तुड़ाई बराबर

होती रहती है, जिससे पेड़ पर लगे फल पर बने धब्बों का आकार लगभग 2 सें. मी. तक होता है। फल पकने के साथ–साथ इन धब्बों का आकार भी बढ़ता जाता है और कुछ समय बाद ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं जिससे इनका आकार अनियमित हो जाता है। धब्बों के किनारे का रंग गहरा होता है और बीच का हिस्सा भूरा या काला होता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर धब्बे के बीच में कवक की बढ़वार हल्की गुलाबी या नारंगी होती है जिसमें कवक के एसरवुलस बने होते है। धीरे–धीरे ये धब्बे फैलकर पूरे फल या उसके अधिकांश भाग पर फैल जाते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोगी फल सड़ने लगते हैं। रोगी फलों में ऐमीनो अम्ल की मात्रा में कमी हो जाती है जिससे पपेन की उपलब्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। फलों का मीठापन भी कम हो जाता है।

श्यामवर्ण रोग (एन्थैकनोज) के लक्षण पर्णवृत एवं तने पर भी दिखायी देते हैं। पेड़ के इन भागों पर भूरे रंग के लम्बे धब्बे बनते हैं। रोगी स्थानों पर कवक एसरवुलस दिखायी पड़ते हैं। रोगी पत्तियाँ गिर कर नष्ट हो जाती हैं।

रोग के कारण**:**

यह रोग कवक कोलेटोट्राइकंम ग्लोओस्पोरीआइडीज के कारण होता है। यह कवक रोगी पेड़ों पर उत्तरजीवी बना रहता है। नम मौसम, रोग विकास के लिए अनुकूल होता है। फल का सड़न ३० डिग्री सेल्सियस तापमान पर अधिक होता है। रोग का फैलाव हवा एवं कीटों द्वारा होता है।

रोग प्रबंध**:**

रोगी पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। कवकनाशी दवा का छिड़काव समयानुसार करना चाहिए। मैंकोजेब, 0.2 प्रतिशत, काबॅन्डाजिम, 0.1 प्रतिशत, डैकोनिल 0.2 प्रतिशत या बोडों मिश्रण (2:2: 50) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।पहला छिड़काव फल लगने के एक मास बाद करना चाहिए तथा उसके बाद 15 से 20 दिन के अंतर पर कुल 5–6 छिड़काव करना चाहिए।

पपीते की प्राप्त उपजः

पपीते की उन्नत किस्मों से प्रति पौधे 35 से 50 किलोग्राम उपज मिल जाती है. पपीते का एक स्वस्थ पेड़ एक सीजन में करीब 40 किलो तक फल देता है।

एन्ट्रेक्नोज– आरम्भ में पत्तियों पर छोटे स्पष्ट धब्बे उत्पन्न होते हैं। धब्बे माप में बढ़ते हैं तथा पास–पास के धब्बे आपस में जुड़ कर संपूर्ण पर्णक को ढक लेते हैं। पूर्णरूप से विकसित धब्बों के चारों तरफ पीला प्रभामण्डल बना होता है। धब्बे के केन्द्र के ऊत्तक असामान्य रूप से पतले और सफेद कागजनुमा होते हैं। पुराने धब्बे के मध्य में ऊत्तकक्षय होता है और वे फट जाते हैं तथा बीच में एक छिद्र बनाते हैं।

गम्भीर रूप से प्रभावित पत्ती में बहुत से छिद्र दिखाई देते हैं। संक्रमण की वृद्धि की अवस्था मंद पत्ती पीली पड़ कर झुलसी सी दिखाई देती है। पत्ती से संक्रमण बढ़ कर पर्णवृन्त पर पहुँचता है, जहाँ धब्बे फंसी जैसे उभरे दिखाई देते हैं। पुष्पन के दौरान पुष्पों में भी संक्रमण होता है, जिससे बड़ी मात्रा में पुष्प गिर जाते है।

रोकथाम– रोग की रोकथाम के लिए बैवेस्टीन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव 45 दिनों के अन्तराल पर या डैकोनिल (0.2 प्रतिशत) 15 दिनों के अन्तराल पर प्रभावी होता है।

एस्कोकाइटा पत्ती धब्बा– धब्बे पीले रंग के भूरे रंग का किनारा लिये होते हैं रोग की गम्भीरता मार्च माह के मध्य में बढ़ जाती हैं जब छोटे धब्बे आपस में मिल कर बड़े आकार के हो जाते हैं, जो कभी–कभी किनारों और शीर्ष से बढ़ कर मध्य शिरा तक पहुँच जाते हैं। प्रभावित पत्तियों की दोनों सतहों पर काले रंग की फलनकाय बनती हैं। रोगग्रस्त भाग कमजोर हो कर गिर जाते है।

रोकथाम–

1. पपीते की एस्को काइटा पत्ती धब्बा रोग प्रतिरोधी प्रजाति का चुनाव करें।
2. एस्कोकाइटा पत्ती धब्बे रोग को डायथेन जेड– 78 (0.2 प्रतिशत) फफूंदीनाशक के प्रयोग से नियन्त्रित किया जा सकता है।

फाइलोस्टिक्टा पत्ती धब्बा– पत्ती पर उत्पन्न धब्बे विभिन्न माप के होते है। कुछ गोल 1–2 या 3 से 4 मिलीमीटर के, और दूसरे अनियमित, अण्डाकार या लम्बे 3 से 5 या 2 से 11 मिलीमीटर के होते है। ये केन्द्र में सफेद रंग के और पीले या भूरे रंग के किनारों से घिरे होते हैं। धब्बे का केन्द्र कागजी हो जाता है और अन्त में गिर जाता है। रोगकारक पादप अवशेषों में जीवित रहता है और हवा द्वारा फैलता है।

रोकथाम– इस रोग को 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण के तीन छिड़काव से रोका जा सकता है।

कीट एवं रोकथामः

माहू– पपीते की फसल का यह प्रमुख कीट है। जो पत्तियों के निचले हिस्से पर छेद कर के रस चूसता है। जिससे पत्तियों में अनेक विकृति आ जाती है। यह कीट विषाणु रोग फैलाने का वाहक भी है।

रोकथाम– इसके नियंत्रण के लिए डाईमेथोएट 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिडकाव करना चाहिए।

सफेद मक्खी– यह पपीते का कीट भी पत्तियों का रस चूसकर हानि पहुँचाता है तथा विषाणु रोग फैलाने में भी सहायक होता है।

रोकथाम– इसकी रोकथाम हेतु इमिडाक्लोरोप्रिड 17.8 एस एल दवा की 100 से 120 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर की दर से अथवा थायोमिथाकजॉम 25 डब्ल्यू जी दवा की 100 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

लाल मकडी– यह कीट पके फलो व पतियों की सतह पर पाया जाता हैं। इस कीट में प्रभावित पत्तियों पीली व फल काले रंग के हो जाते है।

रोकथाम– इसकी रोकथाम हेतु डायमिथोएट 30 ईसी का 800 से 1000 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

विज्ञान

भारतीय मूल के अत्यंत मीठे पौधे

❑ डॉ0 राम स्नेही द्विवेदी

सारांशः रत्ती भारतीय मूल का पौधा हैं जो चीनी से 150 गुना मीठा होता हैंद्य इसके मीठे पदार्थ को एब्रूसोसाइड कहते है जो कैलोरी हीन होता हैं द्य इस लिए इसे डायबटीज, ह्रदय, किडनी,फेफड़े और कैंसर के मरीज खाते हैं तथा स्वस्थ हो जाते हैंद्य इस पौधे का बीज लाल रंग का शीशे की तरह चमकीला काला गोल धब्बा लिए आकर्षक होता हैं। बीज गोल ठोस और बराबर वजन के होते हैं, इसलिए इससे सोना तौला जाता है। एक बीज के बराबर का सोना एक रत्ती होता है।

रत्ती (एब्रस प्रीकेटोरियस एल. Abrus Precatorius L.) "चरक संहिता" में आयुर्वेदिक ओसधि के रूप में प्राचीन काल 200 बी.सी. ई.–100 सी. ई. से उल्लेखित हैं। इसकी उत्पत्ति भारत में हुई इसलिए हिमालय की चोटियों पर पाया जाता हैं। इस पौधे की पत्तियां तथा जड़े मीठी होती हैंद्य और बीज जहरीला होता हैंद्य शुरू–शुरू में इसके मीठे पदार्थ को ग्लाइसीराइजीन जो मुलहठी में मिलता हैं के रूप में पहचान गया। इसलिए इसको "भारतीय मुलहठी" का नाम दिया गयाद्य बाद के अनुसंधानों ने इसके मीठे पदार्थ को एब्रूसोसाइड के रूप में पहचाना। विगत 200 साल से ब्रिटिश काल में सोना रत्ती के बीज द्वारा तौला जाता था। एक बीज के तौल के बराबर का सोना एक रत्ती होता था। 1955 से भारत में सोना किलो ग्राम, ग्राम, मिलीग्राम में तोला जाने लगा। रत्ती वाला तौल वर्तमान में निम्नवत हैं।

8 रत्ती = 1 मासा ; 12 मासा = 1 तोला स्वर्ण; 1 तोला = 11.712 ग्राम;
1 मासा = 0.976ग्राम; 1 रत्ती = 122 मि.ग्रा. स्वर्ण

उत्पत्ति, वितरण एवं जलवायु–

रत्ती की उत्पत्ति भारत में हुई जिसका वर्णन 200 वी.सी. ई.–100 सी.ई. काल के "चरक संहिता" में भी हैद्य यह गर्मी एवं बरसात के मौसम में घास के मैदानों, घाटियों, जंगलो तथा हिमालय की 1200 मी. ऊँची श्रेणियों में उगता हैंद्य यह अवरोही स्वभाव का झाड़ीदार पौधा हैं जो उपोष्ण, उपशीतोष्ण तथा उष्ण कटिबंध वाले जलवायु में फैला हुआ हैंद्य वातावरण का तापमान जब 250 से कम होने लगता हैं तो शीतकाल में इसकी पत्तियाँ सूख जाती हैं तथा गर्मी के मौसम में जब तापमान 250 से ऊपर आने लगता हैं तो तने से हरी पत्तियाँ निकलने लगती हैंद्य पेड़ो की छायो में भी ये पौधा उगता हैं किन्तु फूलने एवं फलने के 1–3 घंटे रोज धूप की जरूरत होती हैद्य भारत तथा विश्व के सभी उपोष्ण एवं उष्ण कटिबंध वाले जलवायु में यह पौधा फ़ैल गया हैं।

रत्ती का बीज (सफ़ेद एवं लाल), फलियाँ, फुल एवं पौधा

पौधो के सामान्य तथा वानस्पतिक गुण–

रत्ती एक बहुवर्षीय, पतझड़ी आरोही पौधा है, जो पेड़ो के तनों, झाड़ियों या सूखे घेरे एवं खम्भे पर चढ़ जाता हैं। यह फलीदार (छीमिदार) फेवेसी कुल का पौधा हैंद्य इसकी जड़े वायुमंडल से नत्रजन सोखती हैं। इसकी पत्तियां हल्कि पीली होती हैं। बैगनी पीले रंग के फूल गुच्छे में पाए जाते हैं फलीदार पौधो के जैसे इसके भी फूल और फलियाँ होती हैं। इस पौधे की पत्तियाँ पतली बहुदलीय(बहुपिछाकर) थोड़ी सी कांटेदार भी होती हैं। इस पौधे का बीज लाल रंग का शीशे की तरह चमकीला काला गोल धब्बा लिए आकर्षक होता हैंद्य सफेद हरे रंग का चमकदार काली आँखों वाले बीज भी भारत में कुछ इको–टाइप के मिलते हैं। इस पौधे का प्रत्येक भाग अयुर्वेदिक औषधि के रूप में काम आता हैं।

मीठा तत्व एवं मीठा कुंड (भंड़ारण)–

रत्ती का मीठा तत्व एब्रूसोसाइड है जो एक तरह का ट्राईटर्पिनाइड हैं। यह चीनी से शुद्धता के अधार पर 75–150 गुना मीठा होता हैं। इसमे कैलोरी नही होता इसलिए इसे चीनी जनित रोगी जब इसे खाते है तो स्वस्थ रहते हैं। यह तत्व पौधो के पत्तियों, तना तथा जड़ो में इकट्ठाहोता हैं। पत्तियों का मिठास जड़ो से अधिक होता हैं। तनो में सबसे कम एब्रूसोसाइड एकत्र होता हैं।

एब्रूसोसाइड कई तरह के होते हैं। एब्रूसोसाइड ए, बी,सी तथा डी पत्तियों में 0.25–0.53ः तक इकट्ठा होता हैं जड़ो में केवल एब्रूसोसाइड ए होता हैं जो तालिका 1 में प्रदर्शित हैं। एब्रूसोसाइड का प्रयोग आयुर्वेदिक दवाओं में होता हैं जो आगे वर्णित हैं।

रत्ती के बीज का जहरीला पदार्थ– बीज जहरीला होता है जो एब्रिन के एकत्र होने से होता हैं। 0.12–0.85ः एब्रिन बीज में पाया जाता हैं। यह भी चार प्रकार का होता हैं जैसे एब्रिन ए, वी, सी तथा डी होता हैं। जो तालिका 1 में प्रदर्शित हैंद्य इसका प्रयोग अनेक आयुर्वेदिक दवाइयों को बनाने में होता ।

सारणी 1– रत्ती के मीठे तथा जहरीले तत्वों के प्रकार उनकी मात्रा तथा भंड़ारण अंग–

भारतीय आयुर्वेद में रत्ती का प्रयोग–

पत्ती, तना तथा जड़ में मीठापन तथा

भारतीय मुलहठी (रत्ती/घुंघुची–हिंदी ,गूंजा–संस्कृत). वैज्ञानिक नामः एब्रस प्रीकेटोरियस एल.

150, जे ब्लॉक, साउथसिटी, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
Email-dr.rsdw@gmail.com.

बीज में जहरीलेपन का उल्लेख आयुर्वेदिक ग्रंथ "सुश्रुता संहिता" (600 ए. डी.) में वर्णित हैं जो अनेक रोगों की दवाइयाँ बनाने में प्रयोग होता हैं जैसे–

1. सफेद रंग का एक बीज पीसकर पानी के साथ दिन में दो बार देने से गठिया

तत्व	भंडारण अंग		
मीठा तत्व	जड़	पत्ती	बीज
समग्र एब्रुसोसाइड	0.27%	0.30-1.60%	-
एब्रुसोसाइड–ए	-	0.25%	
एब्रुसोसाइड–बी	-	0.25%	-
एब्रुसोसाइड–सी	-	0.37%	-
एब्रुसोसाइड–डी	-	0.43%	-
जहरीला तत्व–			
समग्र एब्रिन	-	-	0.85%
एब्रिन–ए	-	-	0.10%
एब्रिन–बी	-	-	125
एब्रिन–सी	-	-	175
एब्रिन–डी	-	-	5

का रोग धीरे–धीरे ठीक हो जाता हैं।

2. पेट के आतंरिक फोड़े के मरिज को रत्ती की जड़ को पीसकर गन्ने की चीनी या गन्ने के रस के साथ रोज 2–3 चाम्मच पिलाने पर धीरे–धीरे ठीक हो जाते हैं।
3. शारीर के जोड़ो, विशेष कर पैर और हाथ के जोड़ो पर रत्ती के बीज का लेप लगाने से लकवा ठीक हो जाता हैं। आज भी जंगालो में आदिवासी इसका प्रयोग करते हैं।
4. गंजी खोपड़ी पर बाल उगाने तथा बाल के कीड़े को मरने के लिए बीजो का लेप लगाने तथा इससे बाल धोने से काफी मदद मिलती हैं।
5. चोट पर जड़ का लेप लगाने पर घाव जल्दी ठीक हो जाता है।
6. यौन संचरित संक्रमण (सिफेलिस) की बीमारी को दूर करने के लिए सोनभद्र जिला (यू.पी.) में "गोर/गोन" जनजाति के लोग जड़ के अर्क को रोज 2 चम्मच पीते हैं।
7. धवल रोग (ल्यूकोडर्मा) पत्ती का रस पीने से दूर हो जाता हैं।
8. जड़ो का पावडर गुड के साथ मिलकर दो गोल टेव्लेट के रूप में रोज खिलाने पर रतौधि (नाईट ब्लाइंडनेस) समाप्त हो जाति हैद्य संथाल जनजाति के लोग इसका प्रयोग करते है।
9. दो सफेद बीजो को रातभर 20 मि.ली. पानी में भिगोकर मासिक धर्म के चौथे दिन खाली पेट उस पानी को पीने से तथा बीज घोंट जाने से गर्भाधान दो साल तक नही होता हैं।
10. जड़ का रस या पावडर खाने से पीलिया का रोग ठीक हो जाता हैं
11. रत्ती के जड़ के अर्क को सतावर (एस्पर्गस रेसीमोसा) तथा अमरवेल (कस्कुटा रिफ्लेक्सा) के जड़ के अर्क के साथ बराबर मिलाकर एक चम्मच तीन बार तीन दिन तक मासिक धर्म के तुरंत बाद देने से गर्भाधान रुक जाता हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रत्ती का दवाइयों में प्रयोग–

1. कामोत्तेजकरू ताज़ी जड़ को चूसने या बीज बीज को दूध में खौलाकर गरम दूध पीने से पुरुष में और सूखे बीज को पानी में खौलाकर उस पानी को पीने या जड़ तथा पत्ती का रस पीने या बीज को मधु के साथ खाने से महिला में कामोत्तेजना बढ़ती हैंद्य (नेपाल, तंजानिया, इजिप्ट, पाकिस्तान, पूर्वी पश्चिमी अफ्रीका, आइवरी कोस्ट, ग्युनिया, अफगानिस्तान तथा भारत)
2. गर्भपातरू सूखे बीज का काढ़ा या बीज का तेल पीने से या पूरा बीज खाने से या बीज का गरम पानी में बना अर्क पीने से गर्भपात होता हैंद्य पूरे पौधे का अर्क या बीजो का पूरा पोटली बनाकर जननांग (गुप्तांग) में डालने से गर्भपात हो जाता हैंद्य आयुर्वेद एवं यूनानी पद्धति की यह संस्तुति हैंद्य (पाकिस्तान, ताइवान, ग्युनिया तथा भारत)
3. कफ, फ्लू एवं अस्थमारू ताजी पत्तियों का रस पीने या ताजी पत्ती खाने या बीज का अर्क या पत्ती का अर्क पीने से कफ, फ्लू एवं अस्थमा ठीक हो जाता हैं (केनिया, वर्जिनिया द्वीप, हैटी, तंजानिया)
4. बलवर्धकरू सूखी पत्ती तथा जड़ो का अर्क जो दूध में खौलाकर बना हो पीने से शक्तिवर्धक होता हैं। (जमायका)
5. प्रसव पीड़ा निवारणरू बच्चा पैदा होते समय औरते पीड़ा के अलावा अनेक कठिनाईयों का सामना करतती हैंद्य पत्ती और तने का अर्क या पत्ती की लुगदी खाने से महिला को तुरंत आराम मिलता हैं। (विसाउ, आइवरी कोस्ट, ग्युनिया)
6. मलेरिया निवारण तथा आक्षेपरोधी रू बीज तथा ताजी जड़ो का अर्क गर्म पानी में मीलाकर पीने से मलेरिया तथा आक्षेप का निवारण होता हैं।(नाईजेरिया)
7. प्रजनन निरोधकरू गर्म पानी में बना पुरे पौधे का अर्क पीने से प्रजनन शक्ति घटती हैंद्य(भारत एवं सुदान)
8. सुजन घटाता हैंरू पत्तियाँ किसी भी खाद्य तेल में पीसने के बाद पुतलिस रूप में सुजन पर रखने पर सुजन कम हो जाती हैं।(थाईलैंड)
9. ब्रोन्काइटीस एवं यकृत रोगरू सुखी पत्तियों का अर्क पीने से ब्रोन्काइटीस तथा यकृत रोग ठीक हो जाता हैं।(ताइवान)
10. शोधकरू बीज को घोटने तथ सूखे बीज का गर्म पानी में बने अर्क को पीने से शोधन कार्य आसन हो जाता हैं।(भारत एवं वेस्टइंडीज)
11. स्नाउशक्ति वर्धकरू सूखे पत्तियों एवं जड़ो का पानी में बना अर्क शक्तिवर्धक होता हैं।(ब्राजील)
12. साँप के काटने की दवारू जड़ को चूसने से साँप के जहर का असर समाप्त हो जाता हैंद्य (पश्चिमी एवं केन्द्रीय अफ्रीका)
13. गर्भ निरोधकरू बीज को सीधा घोटने या जड़ो के अर्क पीने या बीज का गरम पानी में बना अर्क पीने से गर्भ निरोध हो

जाता हैंद्य(भारत, केन्द्रीय अफ्रीका)

14. टी.बी. रोग निरोधकरू गरम पानी में बना सूखे बीज का अर्क लेने से टी.बी. रोग ख़तम हो जाता हैंद्य (भारत, अफ्रीका, ब्राजील)
15. सुजाक (गोनोरिया एवं वामन रोधी)रू पत्ती, तना, फुल और फल का अर्क या पत्ती और तना का अर्क 3–4 बीज या ताजि पत्तियों का रस पीने से सुजाक एवं वामन रुक जाता हैंद्य (पूर्वी अफ्रीका)
16. विषैला एवं प्राणघातकरू बीज विषैला एवं प्राणघातक होता हैंद्य (ब्राजील, गुआना, भारत)
17. आंख की बीमारियाँ ठीक करता हैंरू सुखी पत्तियां का गरम पानी से बनाया गया अर्क आँख में डालने हैंद्य सूखे बीज को पीसकर उसका पानी में बना अर्क आँख में लगाने पर लाल आँख, कन्जेक्टाइटिस (आँख आना) ठीक हो जाता हैंद्य (पश्चिमी अफ्रिका, भारत)
18. आँत के कीड़ो को मरनारू बीजो को निगलने या जड़ो के अर्क को पीने से पेट के कीड़े मर जाते हैं (पूर्वी एवं पश्चिमी अफ्रीका)
19. परिवार नियोजनरू पुरुष पौधे (तना+पत्ती+फुल) का गर्म पानी में बना अर्क एक महीने में दो बार एवं उसी महीने महिला मासिक धर्म अवधि में गुड के गोली के अन्दर रखा एक बीज को घोंट जाय तो एक वर्ष तक बच्चा नहीं पैदा होगाद्य (सुडान, नेपाल, भारत)

रत्ती का व्यवसाइक उपयोगिता–

1. आभूषणरू कंगन तथा माला बीज से बनाया जाता हैंद्य भारतीय रत्ती का बीज लाल शीशे की तरह चमकदार काला गोल धब्बे के साथ मोतियों जैसा दिखता हैंद्य त्रिनिदाद (पश्चिमी इंडीज) एवं तमिलनाडु (भारत) में इसकी बडी मांग हैंद्य अनेक रंग के सफ़ेद, हरा, लाल तथा काले रंग से बना कंगन तथा माला पुरे विश्व में काफी पसंद किया जाता हैंद्य भारत के आदिवासियों के धन उपार्जन का यह एक अच्छा साधन हैंद्य
2. जानवरों के शिकार का यंत्ररू जंगली जानवरों का चमड़ा पाने के लिए 2–3 सेंटीमीटर सूई को पिसे हुए बीज के पतले घोल में 2–4 घंटो तक डूबने के बाद उसे धुप में सुखा लेते हैं और उसे फिर किसी खाद्य तेल में अच्छी तरह डुबोकर उसे बांस के 7–9 से.मी. लम्बे टुकडे में फिट कर देते हैंद्य यह तीर के जैसे काम करता हैंद्य इसे धनुष की सहायता से किसी भी जानवर के शरीर में घुसा दिया जाता हैं जानवर करीब 35 घंटे में मर जाता हैंद्य उपरोक्त विषैली सुई को धतूरे के पिसे हुए बीज के घोल में या मर्करी में डुबोने से जल्दी जानवर मर जाता हैंद्य ब्रिटिश काल में इसे भारत में बंद कर दिया गया था।
3. सोना तौलने की इकाई रू रत्ती के 8 बीज के बराबर का सोना 1 मासा तथा 12 मासा के बराबर भार का सोना एक तोला होता हैंद्य रत्ती के बीज का वजन 122 मि.ग्रा. तथा एक तोले का वजन 11.712 ग्राम होता हैं।
4. प्रसाधनरू बालो के अच्छे उगाव एवं चर्म रोग को दूर करने के लिए पीसे हुए बीज के पैकेट आदि को अफ्रीका, भारत, ब्राजील, न्युगिनिया, जमायका इत्यादि देशो में बिकते हैंद्य भारत के आदिवासी इससे काफी धन कमाते हैंद्य
5. बाजार सक्रीय निर्मित तत्वरू एब्रिन, कॉलिन, एब्रुसिन, एब्रुसोसाइड ।–ग्, ट्रिगोलेलिन, हिमाग्लुथीन से बनते हैंद्य जिसे आयुर्वेद एवं एलोपैथ चिकित्सक विभिन्न रोगों को दूर करने के लिए सस्तुती देते हैंद्य
6. विश्व स्तरकी संस्तुतिरू अभी विश्व स्तर की अमेरिकी एजेंसी (ऍफ़.डी.ए.) द्वारा निरापद (विश्वसनीय) खाद्य सामग्री का सर्टिफिकेट एब्रुसोसाइड को नहीं प्राप्त हुआ हैंद्य भारत के द्वारा प्रयास करने पर अत्यंत मीठे एब्रुसोसाइद को निरापद का सर्टिफिकेट मिलेगा जिससे विश्वस्तरीय निर्यात बढेगा।

हरियाणवी-कविता

प्रदूषण

डॉ0 रणबीर दहिया

म्हारे देश के विकास नै, यो प्रदूषण घणा फैलाया रै।।
दुनिया मैं दिल्ली शहर , ग्याहरवें नम्बर पै बताया रै।।

यमुना पढ़ण बिठादी या , ईब गंगा की बारी कहते रै
तालाब घनखरे सूख लिए, विकास की लाचारी कहते रै
संकट पाणी का कसूता , भारत प्यारे पै मंडराया रै।।
म्हारे देश के विकास नै, यो प्रदूषण घणा फैलाया रै।।

जंगल साफ करण लागरे ,विनाश के लगा गेर दिए
वायु प्रदूषण बढ़ता जावै, विकास के नारे टेर दिए
जंगल जमीन खान बेचे, विकास का खेल रचाया रै।।
म्हारे देश के विकास नै, यो प्रदूषण घणा फैलाया रै।।

प्रदूषण कारण लाखों लोग बख्त तैं पहल्यां मरज्यावैं
ये प्रदूषण उम्र करोड़ों की कई साल कम कर ज्यावै
पूरे भारत देश म्हारे मैं, प्रदूषण नै कहर मचाया रै।।
म्हारे देश के विकास नै, यो प्रदूषण घणा फैलाया रै।।

विकास की जागां देखो विनास की राही चाल रहे
पाणी सपड़ाया पेड़ काटे घणे कसूते घर घाल रहे
संभलो जनता कहै रणबीर प्रदूषण नै देश रम्भाया रै।।
म्हारे देश के विकास नै, यो प्रदूषण घणा फैलाया रै।।

रिटायर्ड प्रोफेसर, पी.जी.आई., रोहतक, पी–26, इन्द्रलोक कालोनी, सोनीपत रोड, रोहतक–124001
ई–मेलः beerdahiya@gmail.com

व्यक्तित्व

पूर्वी उ0 प्र0 में खेती किसानी को दिया नया आयामः पद्मश्री चन्द्रशेखर सिंह

❑ डॉ0 रूद्र प्रताप सिंह

वाराणसी जनपद के रहने वाले श्री चन्द्र शेखर सिंह एक प्रयोगधर्मी किसान हैं जो हजारो किसानों के साथ मिलकर उनके फसलों की उत्पादकता और आय बढ़ाने में सहायता करने हेतु खेती में वैज्ञानिक चेतना और आधुनिकीकरण लाने का अथक प्रयास कर रहे हैं। 8 नवम्बर, 2021 को भारत के राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य करने वाले देश के जिन 119 विभूतियों को पद्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया उनमे से एक नाम श्री चन्द्र शेखर सिंह का भी है । वैसे तो पूर्वी उत्तर प्रदेश में खेती की स्थिति पश्चिमी जनपदों की अपेक्षा विभिन्न कारणों जैसे–छोटी जोत, धान–गेहूं आधारित फसल चक्र, बाढ़ व सूखे की संभावना, कृषि उद्यमिता का अभाव, श्रमिकों की अनुपलब्धता, आधुनिक कृषि यंत्रों की कमी, अनियोजित विपणन, ग्रामीण पलायन, किसान समूह या संगठनात्मक अभाव आदि कारणों से बहुत अच्छी नहीं थी, परन्तु वर्तमान में केंद्र व प्रदेश सरकार द्वारा खेती – किसानी पर विशेष ध्यान दिए जाने और किसान हितैषी कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के सफल क्रियान्वयन के कारण खेती में मूलभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

एक दक्ष कृषि अनुसंधानकर्ता के रूप में श्री सिंह ने न केवल अधिक उपज और उच्च गुणवत्ता वाली किस्में तैयार कीं बल्कि किसानों को उन किस्मों को प्राप्त करने में मदद करने, और उन्हें गुणवत्ता पूर्ण बीज उत्पादन में कुशल बनाने की दिशा में भी प्रयास किया । कृषि के क्षेत्र में सबसे बड़ी चुनौती बैकवर्ड और फारवर्ड लिंकेज को स्थापित करना है और श्री सिंह ने उसके लिए डिजिटल प्लेटफार्म "कृषशाइन" की । संकल्पना और उसकी शुरुआत की स इससे किसानों को बेहतर

कृषि साधन किफायती दाम पर प्राप्त करने और अपने उत्पादों को बाजार के साथ जोड़ने में सहायता मिली है। उन्होंने अनुसन्धान आधारित बीज उत्पादन इकाई दृ "वसुंधरा" की नीव भी रखी जो आज देश भर के किसानों का पसंदीदा जाना – माना बीज ब्रांड बन चुका है।

2 जुलाई, 1956 को जन्मे, श्री सिंह ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से 1982 में स्नातक और 1985 में एलएलबी की डिग्री प्राप्त की। उनके जीवन और कार्य नैतिकता पर उनके किसान और अध्यापक पिता का गहरा प्रभाव पड़ा । वह अपने पिता के इस कथन, "थक जाने के बाद भी मत रुको, जब तक काम पूरा न हो जाये लगे रहो" का अनुकरण करते हैं। उन्होंने एक कृषि वैज्ञानिक के रूप में बहुत छोटी उम्र से ही उपज और बीज की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आधुनिक कृषि तकनीकों के साथ प्रयोग करना शुरू कर दिया था । कृषि विज्ञान केंद्र, राज्य कृषि विश्वविद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिकों के साथ मिल कर 30 वर्षों से अधिक समय से काम करते आ रहे हैं। वर्ष 2015 में अपने सतत प्रयासों के बाद, वह अधिक उपज वाले बीज का विकास करने में सफल हुए और उन्होंने प्रोटेक्शन ऑफ़ प्लांट वैरायटी एंड फार्मर्स राइट्स अथॉरिटी (पीपीवीएफआरए) में अपना पंजीकरण कराने के लिए आवेदन किया । वर्ष 2019 में धान के लिए वसुंधरा दामिनी, मयूरी 6698, साईं नीलकंठ और गेहूं के लिए बाबा विश्वनाथ नामक उनकी पहली चार किस्मों का पंजीकरण पीपीवीएफआरए से हुआ । उन्होंने हरे मटर की छोटी क़िस्म और धान रोपने की नयी तकनीक भी विकसित की । उन्होंने कृषि के आधुनिक तरीकों को अपनाने और इस बारे में जागरूकता फ़ैलाने के लिए, किसान मेले की संकल्पना के साथ बीएचयू के कुलपति से सम्पर्क कर वर्ष 2007 में बीएचयू के पहले किसान मेले का आयोजन अपने

सह प्राध्यापक (फसल सुरक्षा), आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या– 224 229
कृषि विज्ञान केंद्र, कोटवा, आजमगढ़– 276 207
Email: rudrapsingh.doe@gmail-com

खेतों में कराया । वह 1986 से ही "जैविक खेती" पर अधिक ध्यान दे रहे हैं।

एक स्कूल शिक्षक के पुत्र होने के नाते, श्री सिंह अपने आस पास शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने और उसे सर्व सुलभ बनाने के प्रति अत्यंत उत्साही हैं। अपने निरंतर प्रयासों से, उन्होंने जिला शिक्षा विभाग, ग्राम सभा और एक निजी कंपनी की मदद से अपने गाँव के सरकारी विद्यालय की तस्वीर बदल दी है । अत्यंत दयनीय स्थिति वाला स्कूल अत्याधुनिक भौतिक सुविधाओं, स्मार्ट क्लास, विज्ञान प्रयोगशाला और गुणवत्तापूर्ण मध्यान्ह भोजन से सुसज्जित एक मॉडल स्कूल में तब्दील हो गया है। वर्तमान कोविड महामारी के दौरान, उन्होंने अपनी निजी क्षमता के द्वारा बनारस के 1000 से अधिक परिवार और लखनऊ के 800 से अधिक परिवार को चावल, आटा, दाल, मसाले और अन्य सामग्री का वितरण किया।

श्री सिंह को कृषि क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर के कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । उन्होंने 2010 में केवीके पर राष्ट्रीय सम्मेलन, उदयपुर में "राष्ट्रीय पुरस्कार" और वर्ष 2015 में, आईसीएआर – डीएसआर के स्थापना दिवस समारोह में सम्मानित किया गया था । उन्हें प्राप्त अन्य पुरस्कारों में, जगजीवन राम नवोन्मेषी किसान पुरस्कार (आईसीएआर) – 2011, इनोवेटिव राइस फार्मर्स अवार्ड– डीआरआर, हैदराबाद – 2011, नवोन्मेषी कल्टीवेटर पुरस्कार – आईसीएआर– 2011, इनोवेटिव फार्मर्स अवार्ड– आईएसईई – जबलपुर– 2011, एप्रीशिएशन अवार्ड – केवीके, जोन IV (आईसीएआर) स्थापना दिवस–2012, वर्ष 2015 में बीज अनुसन्धान निदेशालय, आईसीएआर के स्थापना दिवस पर सम्मान, बीज उत्पादन पुरस्कार– बीएचयू, 2011, फार्म इनोवेटर अवार्ड– मैसूर, 2010, किसान मेला (आईएआरआई), पूसा, नई दिल्ली, भारत सरकार द्वारा प्रशंसा पुरस्कार, 2010, अत्याधुनिक कृषि तकनीक के उपयोग के लिए पुरस्कार – बीएचयू 2010, वैज्ञानिक किसान सहयोग पुरस्कार–बीएचयू 2008, प्रगतिशील किसान पुरस्कार – आईएआरआई– 2008, मुख्य वक्ता पुरस्कार आईएआरआई 2008, "चन्द्रशेखर कृषिविद" पुरस्कार सीएसएयू कानपुर, 2007 और द्वितीय हरित क्रांति सम्मेलन पुरस्कार, सीएसएयू कानपुर 2007 शामिल है ।

पूरे विश्व का पेट भरने वाले अन्नदाताओं को उनके नवाचार व कृषि आधारित उद्यमिता से रोजगार सृजन करने हेतु पद्म पुरस्कार से सम्मानित किया जाना निश्चित ही वर्तमान सरकार का एक सराहनीय कदम है । खेती में निहित आपार संभावनाओं को मद्देनज़र रखते हुए अब पढ़े लिखे युवाओं का कृषि उद्यम स्थापना हेतु आकर्षण बढ़ रहा हैं।

कविता

यह रागी हुई आभागी क्यो?

अज्ञात

यह 'रागी' हुई अभागी क्यों?
चावल की किस्मत जागी क्यों?
जो 'ज्वार' जमी जन–मानस में,
गेहूँ के डर से भागी क्यों?

यूँ होता श्वेत 'झंगोरा' है।
यह धान सरीखा गोरा है।
पर यह भी हारा गेहूँ से,
जिसका हर कहीं ढिंढ़ोरा है!

जाने कितने थे अन्न यहाँ?
एक–दूजे से प्रसन्न यहाँ।
जब आया दौर सफेदी का,
हो गए मगर सब खिन्न यहाँ।

अब कहाँ वो 'कोदो'–'कुटकी' है?
'साँवाँ' की काया भटकी है।
संन्यासी हुआ 'बाजरा' अब,
गुम हुई 'काँगणी' छुटकी है।

अब जिसका रंग सुनहरा है।
सब तरफ उन्हीं का पहरा है।
अब कौन सुने मटमैलों की,
गेहूँ का साया गहरा है।

यह देता सबसे कम पोषण।
और करता है ज्यादा शोषण।
तोहफे में दिए रसायन अर
माटी–पानी का अवशोषण।

यह गेहूँ धनिया–सेठ बना।
उपभोगी मोटा पेट बना।
जो हज़म नहीं कर पाए हैं,
उनकी चमड़ी का फेट बना।

अब आएँगे दिन 'रागी' के।
उस 'कुरी', 'बटी', बैरागी के।
जब 'राजगिरा' फिर आएगा
और ताज गिरें बड़भागी के।

जब हमला हो 'हमलाई' का।
छँट जाए भरम मलाई का।
चीनी पर भारी 'चीना' हो,
टूटेगा बंध कलाई का।

बीतेगा दौर गुलामी का।
गोरों की और सलामी का।
जो बची धरोहर अपनी है,
गुज़रा अब वक्त नीलामी का।

सेहत

कोरोनोवायरस महामारीः वैकल्पिक चिकित्सा

❑ डॉ0 यूसुफ अख़्तर

(कोरोनोवायरस महामारी फैलने के बाद से ही वैकल्पिक चिकित्सा, जैसे, औषधीय पौधों, होम्योपैथिक, इत्यादि की ग़लत सूचना और फर्जी उपचारों के दावों की मीडिया और सोशल मीडिया में बाढ़ आ गयी. पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा एक आवर्ती विषय है. इसी तरह से ये नीम–हकीम वैद्याचार्य इन संदिग्ध उपचार प्रणालियों से शर्तिया इलाज का दवा करते आएं हैंद्ये सब लंबे समय से प्रतिरक्षा तंत्र को 'फ़र्ज़ी बूस्ट' कर रहे हैं.

वास्तव में, यह सिरफिरा ख्याल इतना विशिष्ट है, कि प्रतिरक्षा प्रणाली को बूस्ट (मज़बूत) करने का दावा नीम–हकीम वैद्याचार्यों के लिए एक ध्वजवाहक नारे जैसा बन गया है. यह लगभग हमेशा, हमारे शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र के बारे में ग़लतफहमी को फैलाते हैं, और इसी लिए वैज्ञानिक साक्ष्यों के प्रकाश में लोगों को पता चलना चाहिए कि प्रतिरक्षा तंत्र क्या है और यह कैसे काम करता है. वैज्ञानिक तथ्यों से ये बात साबित है, कि कई मामलों में तो प्रतिरक्षा तंत्र को बूस्ट करने की ऐसी फ़र्ज़ी कोशिशें उल्टा हानिकारक साबित होती हैंद्यइस विचार के प्रस्तावक, वास्तव में ये कभी नहीं समझाते हैं, कि प्रतिरक्षा तंत्र क्या है. जिसे वे मज़बूत करने का दावा कर रहे हैं और वे ये भी कभी नहीं समझाते हैं कि, आखिर प्रतिरक्षा तंत्र को मज़बूत बनाने की आवश्यकता क्यों होगी या वास्तव में उनका फार्मूला कैसे काम करेगा.

हमारा प्रतिरक्षा तंत्र एक गुलाब के पौधे या अन्य कोई बेल वाली झाड़ी की तरह नहीं है, जो बिना सहारे के गुरुत्वाकर्षण के कारण ज़मीन पर गिर जायेगा. यदि आप एक सामान्य स्वस्थ व्यक्ति हैं, जिसका आहार आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है, तो आपका प्रतिरक्षा तंत्र अपने कार्यों को अच्छी तरह से करने में सक्षम होगा. इसके अलावा ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे आप इस्तेमाल करें और ये बेहतर काम करने लगे. संक्रामक रोग विशेषज्ञ मार्क क्रिस्लीप ने साइंस–आधारित मेडिसिन ब्लॉग पर लिखा है, प्रतिरक्षा तंत्र एक मांसपेशी नहीं है, एक रॉकेट नहीं है, एक पंप नहीं है, एक गुब्बारा नहीं है, न ही कुछ और जो फुलाया, विस्तारित या अधिक शक्ति के साथ समताप मंडल (स्ट्रेटोस्फियर) में लॉन्च किया जा सकता हो."

हम वास्तव में अपनी प्रतिरक्षा तंत्र को कैसे बढ़ा सकते हैंद्यक्या हैं, इसके वैज्ञानिक तथ्य, जिनका सभी अस्पष्ट, निरर्थक,अज्ञानी दावों से कोई लेना–देना नहीं है. इसके लिए पहले, कुछ पृष्ठभूमि जानकारी क्रम में चाहिए जो निम्नलिखित हैं.

प्रतिरक्षा प्रणाली का बुनियादी ढांचा–

प्रतिरक्षा प्रणाली आपस में जुड़ी जैविक संरचनाओं और प्रक्रियाओं का एक विस्मयकारी और बेहद जटिल मकड़जाल है. इन सभी को एक साथ समन्वय में काम करना होता है, ये घटक हमें बीमारियों से बचाते हैंद्यवास्तव में हमारे शरीर में दो तरह की प्रतिरक्षा प्रणालियां काम करती हैंद्यजन्मजात (इननेट) और अनुकूली (अडाप्टिव), दोनों को शरीर की अपनी कोशिकाओं और बाहर से आने वाले आक्रमणकारी रोगाणुओं के बीच अंतर करना आता है. इससे परे, निष्क्रिय प्रतिरक्षा भी है, जो कि अपनी मां के दूध में कोलोस्ट्रम (प्रथमस्तन्य) द्वारा एक नवजात शिशु को प्रदान की जाती है या एंटीबॉडी–समृद्ध सीरम के इंजेक्शन से भी दी जाती है, जैसे कोविड–19 की प्लाज़्मा थेरेपी. निष्क्रिय प्रतिरक्षा उन लोगों के लिए एक वरदान है, जो स्वयं एंटीबॉडी उत्पादन करने में सक्षम नहीं हैं.

जन्मजात प्रतिरक्षा प्रणाली–

भौतिक बाधाएंरू शारीरिक प्रति रक्षा का पहला स्तर भौतिक बाधाओं, जैसे कि त्वचा द्वारा प्रदान किया जाता है, कुछ और गैर–रासायनिक बाधाओं द्वारा संवर्धित किया जाता है. बलगम श्वसन पथ में रोगाणुओं को फंसाता है, और पपनियां (सिलिया) की तरंगें उन्हें दूर फेंक देतीं हैंद्यबाह्य–जीवाणु खांसी और छींकने, पसीने, आंसू और मूत्र के माध्यम से मारे जाते हैंद्यजीवाणुरोधी रसायन त्वचा, लार, आंसू, स्तन के दूध और योनि में पाए जाते हैंद्यपेट में हमारी आंतें गैस्ट्रिक एसिड से रोगाणुओं को मार देतीं है. आंतों में पाए जाने वाले लाभकारी जीवाणु रोगजनक प्रजातियों को वहां बसने नहीं देते हैंद्ययहां तक कि वीर्य डिफेंसिन प्रोटीन और जस्ता (ज़िंक) धातु की मदद से रोगाणुओं को मार देता है।

पैटर्न को पहचानने वाली कोशिकायें–

इनमें मैक्रोफेज, डेंड्रिटिक कोशिकाएं, मास्ट कोशिकाएं, हिस्टियोसाइट्स, लैंगरहैंस कोशिकाएं और कुफर कोशिकाएं शामिल हैंद्यइन सब के ऊपरी कवच पर ऐसे रिसेप्टर्स पाए जाते हैं जो उन अणुओं के बीच अंतर कर सकते हैं, जो हमारे शरीर से संबंधित हैं और जो नहीं हैंद्यये रिसेप्टर ही सूजन की प्रक्रिया (इंफ्लेमेटोरी रिस्पांस) को शुरू करते हैं, जो श्वेत रक्त कोशिकाओं और दूरी फागोसाइट्स कोशिकाओं को संक्रमण के स्थान पर आकर्षित करता हैं फिर ये कोशिकाएं वहां पहुंच कर रोगजनकों को निगलती और नष्ट करती हैंद्यशरीर साइटोकाइन्स नामक प्रोटीन का उत्पादन करता है जो टीएनएफ़ (ज्छथ), एचएमजीबी–1(भ्डळठ1), आईएल–1(प्स्–1) और इंटरफेरॉन के साथ प्रतिरक्षा को उत्प्रेरित करने में मध्यस्थता करतें हैंद्यउत्प्रेणना प्रतिक्रिया को बढ़ाने के लिए पूरक प्रणाली (कॉम्प्लीमेंट सिस्टम) भी सक्रिय हो जाती है. इसमें तीस से अधिक छोटे प्रोटीन और प्रोटीन अंश होते हैं जो एक सुनियोजित बहु–चरण प्रक्रिया में एक साथ काम करते हैंद्यइसी तरह की एक और सुनियोजित बहु–चरण प्रतिक्रिया लेक्टिन मार्ग (पाथवे) है. और फिर कम से कम दस

बायोटेक्नोलॉजी विभाग, बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्विद्यालय, (केंद्रीय विश्विद्यालय), लखनऊ
Email : yusuf@daad&alumni-de

टोल–जैसे रिसेप्टर्स (टीएलआर), साथ ही इनफ़्लेमोसोम्स और साइटोसोम्स हैंद्यप्राकृतिक किलर (नेचुरल किलर या एनके) कोशिकाओं जैसे जन्मजात लिम्फोइड कोशिकायें भी इस तंत्र का हिस्सा हैंद्य

मैंने पहले ही गिनना छोड़ दिया, और ये अभी केवल जन्मजात प्रतिरक्षा के भाग हैद्य अब हम शर्तिया कह सकते हैं कि प्रतिरक्षा प्रणाली कितनी जटिल है, और नीम–हकीम वैद्याचार्य द्वारा प्रतिपादित एक साधारण हस्तक्षेप के प्रभावी होने की संभावना क्यों नहीं है? लेकिन रुकिए, हमारे प्रतिरक्षा तंत्र में अभी और भी अस्त्र–शस्त्र हैं।

अनुकूली प्रतिरक्षा तंत्र–

जन्मजात प्रणाली मनुष्यों समेत सभी जीवों में मिलती–जुलती पायी जाती है, लेकिन अनुकूली प्रतिरक्षा तंत्र जैव–विकास के इतिहास में बाद के समय में विकसित हुआ है, जो शरीर को विशिष्ट रोगाणुओं जिनका वो पहले सामना कर चुके हैं, को याद रखने और प्रतिक्रिया देने में माहिर होता है. ये तंत्र केवल कशेरुकी जंतुओं में पाया जाता हैद्य टीकाकरण की सफलता इसी स्मृति पर निर्भर करती है. रोगाणुओं पर पाए जाने वाले एंटीजन को एक विशेष प्रकार की श्वेत रक्त कोशिका द्वारा पहचाना जाता है जिसे लिम्फोसाइट्स कहते हैंद्यउनकी ऊपरी सतह पर रिसेप्टर होते हैं, जो एक रोगाणु के छोटे टुकड़ों (एंटीजन) से जुड़ जाते हैं, और फिर उन्हें अन्य कोशिकाओं की सतह पर पाए जाने वाले मेजर हिस्टोकोम्पैटिबिलिटी कॉम्प्लेक्स अणुओं से मिलाते हैं जो अंततः शरीर में पाए जाने वाले सभी प्रकार के अणुओं और बाहरी रोगाणुओं पर पाए जाने वाले अणुओं (एंटीजन) में विभेद करते हैं.

लिम्फोसाइट्स को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता हैरू बी–कोशिकाएं और टी–कोशिकाएं. टी–कोशिकाओं को हत्यारी टी– कोशिकाओं, सहायक–टी कोशिकाओं और नियामक टी–कोशिकाओं में विभाजित किया गया है. सक्रिय होने पर ये टी–कोशिकाएं ऐसे रसायनों (साइटोटोक्सिन) का उत्पादन करती हैं, जो शरीर के बाहर से आये रोगाणुओं को मार देते हैंद्यऔर इसके बाद एक और विभिन्न रिसेप्टर्स वाली गामा–डेल्टा टी–कोशिकाएं भी होती हैंद्यबी–कोशिकाएं एंटीजन को प्रस्तुत करती हैं, और एंटीबॉडी का स्राव करती हैंद्यउनकी सक्रियता इस तंत्र में बनने वाले रसायनों की एक श्रृंखला से बढ़ाई और घटाई जा सकती है. बी–कोशिकाएं भी कई प्रकार की होती हैंरू प्लास्माबलास्ट्स, प्लाज़्मा कोशिकाएं, मेमोरी बी–कोशिकाएं, लिम्फोप्लाज़मासिसटॉइड–कोशिकाएं, बी–2 कोशिकाएं, बी–1 कोशिकाएं और रेग्युलेटरी बी–कोशिकाएं।

एंटीबॉडी प्रोटीन की दो भारी श्रृंखलाओं और दो हल्की श्रृंखलाओं से मिल कर बनी होती हैं, जिसमें एक एंटीजन से टकराने के लिए विशिष्ट भाग होता है।

एंटीबॉडी के पांच प्रमुख प्रकार हैं–

आईजीजी (IgG), आईजीए (IgA), आईजीएम (IgM), आईजीई (IgE) और आईजीडी (IgD)।

ज़रूरत पड़ने पर हमारे प्रतिरक्षा तंत्र द्वारा, बहुत कम समय में लाखों एंटीबॉडी अणुओं का उत्पादन किया जा सकता है. क्या आप अब तक अभिभूत हो चुके हैं? या सटपटा गए हैं? जैसा कि आप देख सकते हैं, प्रतिरक्षा प्रणाली पूरी तरह से जटिलता का एक उलझा हुआ मकड़जाल हैद्य

यहां सिर्फ बहुत प्रमुख घटकों को सूचीबद्ध किया गया है, जो मिलकर प्रतिरक्षा तंत्र को बनाते हैं, और ऐसे और भी हैं जिनका यहां उल्लेख नहीं किया गया है; यह सूची संपूर्ण नहीं है. कोई अनुसंधान यह दिखा सकता है कि एक हस्तक्षेप इन घटकों में से एक या अधिक की मात्रा में वृद्धि या कमीं कर सकता है, लेकिन किसी भी शोध ने यह नहीं दिखाया है, कि इस तरह के अधकचरे फॉर्मूले से युक्त हस्तक्षेपों (वैकल्पिक चिकित्सीय) के परिणामस्वरूप संक्रमण के कम होने जैसे क्लिनिकल परिणाम हासिल हुए हों. जब कोई तंत्र इतना जटिल है, तो उस मकड़जाल में एक एकल धागे का हेरफेर करना कोई समझदारी नहीं. ज़्यादातर ऐसे हस्तक्षेपों का इस अति जटिल तंत्र के समग्र कामकाज पर या तो कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता या अप्रत्याशित प्रभाव पड़ता है जो फायदे से अधिक नुकसान देता हैद्य

प्रतिरक्षा तंत्र के विकाररू

प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में कमी या अधिकता हो सकती है. अमूमन प्रतिरक्षा की कमी गंभीर कुपोषण के कारण होती है, आनुवंशिक विकार जैसे कि सीवियर कंबाइंड इम्यूनो डेफिशियेंसी (एससीआईडी) के साथ–साथ एचआईवी / एड्स संक्रमण, या इम्यूनोसप्रेसेरिव दवाइयों के इस्तेमाल से भी इसकी कमीं हो सकती है। कुछ लोगों में ज़रुरत से अधिक प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया भी हो सकती है, जैसे –

- ऑटोइम्यून विकार जो शरीर की स्वयं की कोशिकाओं पर ही हमला करते हैं, जैसे कि गठिया (रुमेटाइड अर्थराइटिस) और टाइप–1 मधुमेह।
- एलर्जी और अतिसंवेदनशीलता संबंधी विकार (बहती नाक से लेकर छींकने और बुख़ार आने तक से लेकर संभावित घातक एनाफिलेक्टिक प्रतिक्रियाएं जैसे मधुमक्खी/बर्रैया के डंक से होने वाली स्थिति तक)।
- सूजन से होने वाले रोग (इंफ्लामैटोरी बीमारियां) जैसे सीलिएक रोग, सूजन आंत्र रोग, अस्थमा, अंग प्रत्यारोपण अस्वीकृति, इत्यादि।
- क्रोनिक संक्रमण और सूजन से संबंधित कैंसर, जैसे हेपेटाइटिस–बी और ह्यूमन पैपिलोमावायरस (एचपीवी) के संक्रमण से होने वाला सर्वाइकल कैंसर।

सूजन (इंफ्लेमेटरी रिस्पांस)रू शरीर के लिए अच्छा और बुरा दोनोंद्य

जब आप निमोनिया होने पर खांसते हैं, ठंड लग जाने से छींकते हैं, फोड़ा–फुंसी निकलने पर दर्द का अनुभव करते हैं, या शरीर में बुखार का अनुभव करते हैं, तो यह रोगाणु–सूक्ष्मजीव अकेला ऐसा करने में सक्षम नहीं है, जो उन लक्षणों का कारण बनता है; यह आपके शरीर की अपनी प्रतिक्रिया है – उस परजीवी से निपटने के लिए प्रतिरक्षा तंत्र का प्रयास. हमें शरीर में सूजन वाली प्रतिक्रिया की आवश्यकता है; यह रोग का उपचार शुरू करता है और बीमारियों और चोटों से हमें उबारता है. लेकिन इससे बहुत नुकसान भी होता है। सूजन को होना, एथेरोस्क्लेरोसिस, रक्त के थक्कों के जमने, फुफ्फुसीय एम्बोलस (फेफड़ों की धमनियों का ब्लॉक होना), दिल के दौरे, स्ट्रोक और अन्य समस्याओं का कारण है. जैसा कि मार्क क्रिस्लिप ने लिखा, ष्यदि कुछ केमिकल उत्पाद (प्रतिरक्षा तंत्र के) आपकी प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ा रहे हैं, तो यह वास्तव में आपकी उत्प्रेरक प्रतिक्रिया (प्रतिरक्षा तंत्र को सक्रिय कर रहें हैं.ष और अगर ये आवश्यकता

से अधिक बढ़ जाएं तो एक बुरी बात हो सकती है. प्रतिरक्षा प्रणाली को ज़रूरत से ज़्यादा उत्प्रेणा देने से मृत्यु तक हो सकती हैद्य

प्रतिरक्षा तंत्र को 'बूस्ट' करने वाले नकली और खोखले दावे–

इन दावों में से कुछ के प्रस्तावकों का कहना है, कि उनका अधकचरा ज्ञान वाला फार्मूला प्रतिरक्षा तंत्र को मज़बूत करेगा, लेकिन वो ऐसा कर नहीं पाता. सिर्फ व्यायाम, संतुलित आहार और पर्याप्त नींद जैसी चीजें हैं, जो पूरे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अच्छी सलाह हो सकती है. यदि प्रतिरक्षा प्रणाली पहले से ही पर्याप्त रूप से काम कर रही है, तो वे इसे और बेहतर नहीं बना सकते हैंद्यलगभग सभी वैकल्पिक स्वास्थ्य चिकित्सकों का दावा है, कि उनके उपचार से प्रतिरक्षा तंत्र में सुधार होगा. पश्चिमी दुनिया में, चीरोप्रैक्टिसर्स (हड्डी बैठाने वाले) का दावा है, कि रीढ़ की हड्डी को समायोजित करने का काम करेगा. एक्यूपंक्चर चिकित्सकों की कल्पना है, कि वे अस्तित्वहीन एक्यू–पॉइंट्स में सुइयों को घुसा कर इसे पूरा कर सकते हैं, ताकि आपके शरीर में समान रूप से 'क्यूआई' (एक तरह का काल्पनिक आवेश) के प्रवाह को सुचारु किया जा सके. होम्योपैथी के पास बहुत कुछ हैरू उनके शीर्ष तीन ष्ह्म्यूनोथेरेपीष् उपचार एलियम सेपा, जेल्सीमियम और ऑसिलोकोकिनम हैंद्यओस्सिलोकोकिनम तो एक मज़ाक लगता है. यदि हम इसके इतिहास में जाएं तो यह एक आदमी का भ्रम था जो कभी अस्तित्व में था ही नहीं. होम्योपैथी के पहले दो सिद्धांत, एक ये कि स्वस्थ आदमी के किसी दवा के खाने पर जिस तरह के लक्षण उत्पन्न होते हैं, यदि किसी बीमरी में वैसे ही लक्षण हों, तो वो दवा उस बीमारी को सही करने में सक्षम होगी. और दूसरा सिद्धांत कि दवा को जितना ज़्यादा द्रव मिला कर पतला किया जाये उसकी ताकत उतनी ही बढ़ जाएगी, मानो एक चम्मच दवा अगर हिन्द महासागर में मिला दी जाये तो ये बिलकुल संजीवनी बूटी बन जाएगी। ये सब बिल्कुल ही कपोल–कल्पित और अवैज्ञानिक सिद्धांत हैं जिनको कभी भी किसी भी प्रयोग से सिद्ध नहीं किया जा सकाद्य

डॉ सीड्स कंपनी हल्दी पाउडर को इस दावे के साथ बेच रही है, कि यह प्रतिरक्षा तंत्र को बढ़ाता है. सबूत कहां है? हल्दी के होने वाले लाभ को दशकों पूर्व इसमें मौजूद केमिकल, करक्यूमिन की वजह से बताया गया था. लेकिन, हजारों शोध पत्रों और 120 क्लिनिकल परीक्षण के परिणाम उपलब्ध हैं, फिर भी करक्यूमिन का दावा पूरी तरह से सिद्ध होता नहीं दिखता. रासायनिक सबूतों की एक समीक्षा में, वैज्ञानिक लिखते हैं कि करक्यूमिन एक ष्अस्थिर, प्रतिक्रियाशील, गैर–जैवउपलब्ध यौगिक है, और इसलिए, ये किसी भी नयी दवा को विकसित करने के लिए एक अत्यधिक अनुचित पदार्थ है"द्य

इसी तरह से योग गुरु बाबा रामदेव की कंपनी पतंजलि आयुर्वेद ने कोविड –19 के लिए कोरोनिल नामक एक आयुर्वेदिक उपचार किट को इलाज के रूप में लॉन्च किया. भारतीय मीडिया ने कोरोनोवायरस उपचार में इसे सफलता के रूप में संदर्भित करते हुए 'किट' पर शो चलाया. बाबा रामदेव, ने कहा कि इस किट को ष्क्लिनिकल रूप से नियंत्रित परीक्षण का उपयोग करके विकसित किया गया हैष् और दावा किया कि यह ष्कोविड –19 के लिए 100ः इलाज हैष् 'कोरोनिल' संबंधित दस्तावेज़ों और पतंजलि आयुर्वेद द्वारा दी गयी जानकारियों और आंकड़ों के आधार पर जब सेंट जूडस चिल्ड्रन रिसर्च हॉस्पिटल, मेम्फिस, संयुक्त राज्य अमेरिका के रोगाणुं एवं प्रतिरक्षा विशेषज्ञ एवं वैज्ञानिक डॉ. संदीप कुमार धंदा ने इसकी समीक्षा की तो पतंजलि आयुर्वेद के सारे दावे औंधे मुंह गिर गए. इसके बाद, भारत सरकार के आयुष मंत्रालय ने एक बयान जारी किया कि पतंजलि आयुर्वेद को प्रभावकारिता के प्रमाण के अभाव के कारण कोविड –19 के इलाज के रूप में दवा का विज्ञापन नहीं करना चाहिए. देश की कई अदालतों में पतंजलि आयुर्वेद के खिलाफ भ्रामक प्रचार के लिए मुक़दमे भी दायर हुए. इसके बाद उन्होंने अपने शर्तिया इलाज के अपने सारे दावे वापिस ले लिए और कोरोनिल किट को प्रतिरक्षा तंत्र को बूस्ट करने वाला बता कर बेचना प्रारम्भ कर दिया, ऊपर की गयी व्याख्या से स्पष्ट है कि ये भी तथ्यात्मक रूप से सही नहीं हैद्य

हालांकि ऐसा बिलकुल भी नहीं है कि औषधीय पौधों से प्राप्त अर्कों में कोई चिकत्सीय गुण न होते हों, लेकिन वैज्ञानिक तथ्यों केनअनुसार इनका काम करने का तरीका कुछ और है, जो कि इन नीम–हकीम वैद्याचारों द्वारा किये जाने वाले दावों से बिलकुलनभिन्न है. असल में हमारे शरीर की कोशिकाओं में एक साथ हज़ारों की संख्या में नियोजित ढंग से जैव–रासायनिक प्रतिक्रियाएं चलती रहती हैं द्यइन्ही प्रतिक्रियाओ के फलस्वरूप हज़ारों की संख्या में रसायन बनते और टूटते हैंद्यइन्हीं में शरीर में कुछ बुरे रसायन जिन्हे 'टोक्सिन' (विष) कहते हैं, वो भी बनते हैं, ऐसे विष–पदार्थ, ख़राब जीवन शैली, बीमारियां, संक्रमण, अवसाद इत्यादि होने पर शरीर में बहुत अधिक बनने लगते हैंद्यये पदार्थ हमारे शरीर को भयंकर नुक्सान पहुंचाते हैंद्य औषधीय पौधों के अर्कों में बहुत सारे ऐसे पदार्थ पाए जाते हैं जो इन विष–पदार्थों, ख़ास करके इनके कुछ महत्वपूर्ण प्रकार, जिन्हें हम ऑक्सीडेटिव, नाइट्रोसेटिव और फ्री रेडिकल्स को सोख लेने और शरीर से बाहर निकाल फेंकने की क्षमता रखते हैंद्य अर्कों में मिलने वाले इन पदार्थों में इस क्षमता के कारणों में से एक, उनमें पाए जाने वाली बेंज़ीन–चक्र की बहुतायत हैद्य

प्रतिरक्षा प्रणाली को 'बूस्ट' करने वाला वाक्य उन लोगों के लिए अर्थहीन है, जो वास्तव में प्रतिरक्षा प्रणाली को समझते हैंद्य नीम– हकीम वैद्याचार्यों के लिए तो यह केवल ग्राहकों को धोखा देने में मदद करने के लिए उपयोगी एक जुमला भर है. यहां पर नक़्क़ालों से सावधान वाला सिद्धांत लागू होता हैंद्य

वास्तविक प्रतिरक्षा बूस्टर क्या हो सकता है–

वैज्ञानिक आधार पर सिर्फ एक तरीका है, जिससे आप वास्तव में अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को कृत्रिम रूप से बढ़ा सकते हैंरू और वो है टीककरण. ये विशिष्ट रोगों को पहचानने और उनसे लड़ने के लिए आपके प्रतिरक्षा तंत्र को अभ्यास कराते हैंद्य टीके सामान्यीकृत सूजन का कारण नहीं बनते हैंद्यवे अनुकूली प्रतिरक्षा तंत्र के शस्त्रागार को अधिक हथियारों से लैस करते हैं. यदि आप उस विशिष्ट संक्रामक जीवाणुं (जिसका टीका लिया था) से फिर से सामना करते हैं, तो वे बड़ी संख्या में एंटीबॉडी का उत्पादन करने के लिए शरीर को पहले से प्रशिक्षित रखते हैंद्यकई टीके शरीर की प्रतिरक्षा तंत्र को अभिभूत नहीं करते हैं; वे सिर्फ इसका कुशल उपयोग करते हैं।

अंतिम सत्यरू टीकाकरण के अलावा ष्प्रतिरक्षा प्रणाली को बूस्ट करने का कोई अन्य कृत्रिम तरीका नहीं है।

वैज्ञानिक

स्टीफन हॉकिंग

स्टीफन हॉकिंग अपने जीवनकाल में ही एक किंवदंती (आख्यान–पुरुष) बन गए थे। इसके कारणों को समझना ज्यादा कठिन नहीं है। पहला कारण तो यही है कि उन्होंने शारीरिक विकलांगता के बावजूद ब्रह्मांड विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोधकार्य किए और कुछ क्रांतिकारी सिद्धांत प्रस्तावित किए। प्रत्येक विचारशील मनुष्य को ब्रह्मांड की उत्पत्ति के विचार और सिद्धांत आकर्षित और प्रभावित करते रहें हैं, फिर चाहें वह व्यक्ति वैज्ञानिक हो, धर्माचार्य हो या आम मनुष्य। हॉकिंग की बेतहाशा लोकप्रियता का दूसरा कारण उनकी लोकप्रिय पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम' है। दरअसल, हॉकिंग का नाम उन विलक्षण वैज्ञानिकों में शुमार होता है, जिनका अनुसंधान भी पहले दर्जे का होता है और लेखन भी पहले दर्जे का! हॉकिंग का यह मानना था कि किसी भी वैज्ञानिक के शोधकार्यों की पहुंच सामान्य जनमानस तक होनी चाहिए। इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने जनसामान्य के लिए सरल–सहज भाषा में लेख और पुस्तकें लिखीं तथा सार्वजनिक व्याख्यान भी दियें। उपर्युक्त बातों के आलावा हॉकिंग की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण था – उनका विलक्षण व्यक्तित्व, उनकी विनम्रता और अपनी बातों को व्यक्त करने का उनका अनूठा अंदाज। आइए, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक नज़र डालते हैं।

स्टीफन विलियम हॉकिंग का जन्म 8 जनवरी, 1942 को इंग्लैंड के ऑक्सफ़ोर्ड में फ्रेंक और इसाबेल हॉकिंग दंपत्ति के घर में हुआ था। इसे महज एक संयोग ही माना जा सकता है कि हॉकिंग का जन्म महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली के देहांत के ठीक तीन सौ वर्ष बाद हुआ था। आठ वर्ष की उम्र में जब स्टीफन विद्यालय जाने के योग्य हुए तो उनको प्राथमिक शिक्षा के लिए लड़कियों के एक स्कूल में उनका दाखिला दिला दिया गया। 11 वर्ष की उम्र के बाद हॉकिंग ने सेंट मेलबर्न नामक स्कूल में अपनी आगे की पढ़ाई की। हॉकिंग को बचपन में उनके सहपाठी 'आइंस्टाइन' कहकर संबोधित करते थे। मगर आइंस्टाइन की ही तरह हॉकिंग भी बचपन में प्रतिभाशाली विद्यार्थी नहीं माने जाते थे। मगर हाईस्कूल के अंतिम दो वर्षों में गणित और भौतिक विज्ञान के अध्ययन में उनकी रूचि बढ़ने लगी थी। उनके पिता चाहते थे कि स्टीफन आगे की पढ़ाई जीव विज्ञान विषय लेकर करें। मगर स्टीफन की जीव विज्ञान में रूचि नहीं थी, इसलिए उन्होंने अपनी रूचि के विषय गणित और भौतिक विज्ञान की पढ़ाई के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। इसके बाद वे 'ब्रह्मांड विज्ञान' (कॉस्मोलॉजी) में उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए कैंब्रिज विश्वविद्यालय चले गये। वे अपनी पी–एच.डी. उस समय के प्रसिद्ध खगोल वैज्ञानिक सर फ्रेड हॉयल के मार्गदर्शन में करना चाहते थे, मगर गुरु के रूप में उन्हें हॉयल का सानिध्य नहीं मिला बल्कि उन्हें डॉ. डेनिश शियामा नामक एक कम जानेमाने भौतिकविद का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

जब स्टीफन 21 वर्ष के थे तो एक बार छुट्टियां मनाने के लिए अपने घर पर आये हुए थे। वे सीढ़ियों से उतर रहे थे कि तभी उन्हें बेहोशी का एहसास हुआ और वे तुरंत ही नीचे गिर पड़े। उन्हें फैमली डॉक्टर के पास ले जाया गया शुरू में उन्होंने उसे मात्र एक कमजोरी के कारण हुई घटना मानी, मगर बार–बार ऐसा होने पर उन्हें विशेषज्ञ डॉक्टरो के पास ले जाया गया, जहाँ यह पता चला कि वे अमायोट्राफिक लेटरल स्कलेरोसिस (मोटर न्यूरॉन) नामक एक दुर्लभ और असाध्य बीमारी से ग्रस्त हैं। इस बीमारी में शरीर की मांसपेशियां धीरे–धीरे काम करना बंद कर देती हैं, जिसके कारण शरीर के सारे अंग बेकाम हो जाते हैं और अंततरू मरीज घुट–घुट कर मर जाता है। डॉक्टरों का कहना था कि चूँकि इस बीमारी का कोई भी इलाज मौजूद नहीं है इसलिए हॉकिंग बस एक–दो साल ही जीवित रह पाएंगें। स्टीफन को यह लगने लगा था कि इस बीमारी के कारण अपनी पी–एच.डी. पूरी नहीं कर पाएंगे। वे यह भी सोचने लगे कि 'यदि अनुसंधान कार्य पूरा भी हो जाता है, तो मैं जीवित ही नहीं रहूँगा तो डिग्री का क्या फायदा?' लेकिन कुछ समय डिप्रेशन में रहने के बाद आखिरकार स्टीफन की सोच और कार्यशैली में जबरदस्त बदलाव आया। धीरे–धीरे उन्हें लगने लगा कि वे कई अच्छे कार्य कर सकते हैं। हॉकिंग ने कहा भी था कि हमें वह सब करना चाहिए जो हम कर सकते हैं, लेकिन हमें उन चीजों के लिए पछताना नहीं चाहिए जो

हमारे वश में नहीं है। उन्होंने ऐसा ही किया और अपना अनुसंधान कार्य जारी रखा।

इधर स्टीफन का सौभाग्य कि डॉक्टरों की भविष्यवाणी के दो वर्ष बीत गए और उन्हें कुछ भी नहीं हुआ तथा बिमारी की बढ़त भी धीमी होती गई, जिससे उनका उत्साह और मनोबल बढ़ता गया। इसी बीच जेन वाइल्ड नामक एक लड़की से स्टीफन को प्रेम हो गया। वे दोनों शादी करना चाहते थे, मगर शादी के बाद जीवनयापन के लिए स्टीफन को नौकरी की जरूरत थी और नौकरी के लिए पी–एच.डी. की डिग्री प्राप्त करना अनिवार्य जरूरत थी। अतरू वह अपने अनुसंधान कार्य के प्रति गंभीर हो गए और अपने काम में पूर्णतया तल्लीन हो गए। इसी दौरान जॉनविले एंड क्यूस कॉलेज में उन्हें रिसर्च फेलोशिप मिल गई। यह उनके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इसके बाद हॉकिंग ने अपनी प्रेमिका जेन वाइल्ड से विवाह किया, तब तक हॉकिंग के शरीर का दाहिना हिस्सा पूरी तरह से लकवाग्रस्त हो चुका था। दिन–ब–दिन उनकी परेशानियाँ बढ़ती ही गई अब वे लाठी के सहारे ही चल सकते थे। मगर साथ में, विज्ञान के प्रति हॉकिंग की ललक में भी दिन–ब–दिन बढ़ोत्तरी होती गई। इस बीमारी के चलते उन्हें बाद में बोलने में भी काफी परेशानी होने लगी, इसी कारण वे स्पीच जनरेटिंग डिवाइस का उपयोग करने लगे। बीमारी बढ़ने पर जब वे चलने–फिरने में पूर्णतरू असमर्थ हो गये, तो उन्होंने तकनीकी रूप से सुसज्जित व्हील चेयर का इस्तेमाल शुरू कर दिया।

वर्ष 1965 में उनका पहला शोधपत्र 'ऑन द हॉयल–नार्लीकर थ्योरी ऑफ ग्रेविटेशन' प्रोसीडिंग ऑफ द रॉयल सोसाइटी में प्रकाशित हुआ। मार्च 1966 में हॉकिंग को पी–एच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई। डॉक्टरेट की उपाधि मिलने के बाद उन्होंने सापेक्षता सिद्धांत और क्वांटम भौतिकी पर शोधकार्य शुरू कर दिया। उन्होंने गणितज्ञ रोजर पेनरोज के साथ मिलकर ब्लैक होल पर शोधकार्य प्रारम्भ किया और वर्ष 1970 में उन्हें क्वांटम यांत्रिकी और आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत का उपयोग करके ब्लैक होल से विकिरण उत्सर्जन का प्रदर्शन करने में सफलता प्राप्त हुई। इस प्रकार से हॉकिंग ने अपने वैज्ञानिक जीवन का सफ़र शुरू कर दिया और धीरे–धीरे उनकी प्रसिद्धि पूरी दुनिया में फैलने लगी।

वर्ष 1966 में रोजर पेनरोज के साथ मिलकर ब्लैक होल पर अनुसंधान कार्य शुरुआत करने से लेकर 1990 दशक के मध्य तक स्टीफन हॉकिंग गणित और मूलभूत भौतिकी की संधि पर गंभीरतम काम में जुटे रहे। 1960 के दशक में स्टीफन हॉकिंग, जार्ज एलिस और रोजर पेनरोज ने आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत को दिक् और काल की गणना में प्रयुक्त करते हुए यह बताया कि दिक् और काल सदैव से विद्यमान नहीं थे, बल्कि उनकी उत्पत्ति 'महाविस्फोट' के साथ हुई। हॉकिंग को एहसास हुआ कि महाविस्फोट दरअसल ब्लैक होल का उलटा पतन ही है। स्टीफ़न हॉकिंग ने पेनरोज के साथ मिलकर इस विचार को और विकसित किया और दोनों ने 1970 में एक संयुक्त शोधपत्र प्रकाशित किया और यह दर्शाया कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति ब्लैक होल के केंद्रभाग में होने वाली 'विलक्षणता' (सिंगुलैरिटी) जैसी स्थिति से ही हुई होगी। दोनों ने यह दावा किया कि महाविस्फोट से पहले ब्रह्मांड का समस्त द्रव्यमान एक ही जगह पर एकत्रित रहा होगा। उस समय ब्रह्मांड का घनत्व असीमित था तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक अति–सूक्ष्म बिंदू में समाहित था। इस स्थिति को परिभाषित करने में विज्ञान एवं गणित के समस्त नियम–सिद्धांत निष्फल सिद्ध हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने इस स्थिति को विलक्षणता नाम दिया है। किसी अज्ञात कारण से इसी सूक्ष्म बिन्दू से एक तीव्र विस्फोट हुआ तथा समस्त द्रव्य इधर–उधर छिटक गया। इस स्थिति में किसी अज्ञात कारण से अचानक ब्रह्मांड का विस्तार शुरू हुआ और दिक्–काल की भी उत्पत्ति हुई। इस परिघटना को सर फ्रेड हॉयल द्वारा 'बिग बैंग' का नाम दिया गया।

सूर्य से लगभग 10 गुना अधिक द्रव्यमान वाले तारों का जब हाइड्रोजन और हीलियम खत्म हो जाता है, तब वे अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण सिकुड़कर अत्यधिक सघन पिंड ब्लैक होल बन जाते हैं। ब्लैक होल अत्यधिक घनत्व तथा द्रव्यमान वाले ऐसें पिंड होते हैं, जो आकार में तो बहुत छोटे होते हैं। मगर, इनके अंदर गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल होता है कि इसके चंगुल से प्रकाश की किरणों का निकलना भी असंभव होता हैं। चूंकि यह प्रकाश की किरणों को भी अवशोषित कर लेता है, इसीलिए यह हमारे लिए सदैव अदृश्य बना रहता है। ब्लैक होल के बारे में हमारी वर्तमान समझ स्टीफन हॉकिंग के कार्यों पर ही आधारित है। हॉकिंग ने वर्ष 1974 में 'ब्लैक होल इतने काले नहीं' शीर्षक से एक शोधपत्र प्रकाशित करवाया। इस शोधपत्र में हॉकिंग ने सामान्य सापेक्षता सिद्धांत एवं क्वांटम भौतिकी के सिद्धांतों के आधार पर यह दर्शाया कि ब्लैक होल पूरे काले नही होते, बल्कि ये अल्प मात्रा में विकिरणों को उत्सर्जित करतें हैं। हाकिंग ने यह भी प्रदर्शित किया कि ब्लैक होल से उत्सर्जित होने वाली विकीरणें क्वांटम प्रभावों के कारण धीरे–धीरे बाहर निकलती हैं। इस प्रभाव को हॉकिंग विकीरण (हॉकिंग रेडिएशन) के नाम से जाना जाता है। हॉकिंग विकिरण प्रभाव के कारण ब्लैक होल अपने द्रव्यमान को धीरे–धीरे खोने लगते हैं, तथा ऊर्जा का भी क्षय होता हैं। यह प्रक्रिया लम्बें अंतराल तक चलने के बाद आखिरकार ब्लैक होल वाष्पन को प्राप्त होता है। दिलचस्प बात यह है कि विशालकाय ब्लैक हालों से कम मात्रा में विकिरणों का उत्सर्जन होता है, जबकि लघु ब्लैक होल बहुत तेजी से विकिरणों का उत्सर्जन करके वाष्प बन जाते हैं।

आधुनिक खगोल वैज्ञानिक ब्रह्मांड की व्याख्या दो मूल किंतु अधूरे सिद्धांतों की सहायता से करते हैं, पहला आइंस्टाइन का सामान्य सापेक्षता सिद्धांत और दूसरा क्वांटम सिद्धांत। सामान्य सापेक्षता सिद्धांत विराट ब्रह्मांड की संरचनाओं जैसे– तारों, ग्रहों और आकाशगंगाओं आदि पर लागू होती है। विशाल खगोलीय पिंडों पर गुरुत्वाकर्षण बल किस प्रकार से प्रभाव डालता है, का अध्ययन सामान्य सापेक्षता सिद्धांत द्वारा किया जाता है। वहीं क्वांटम सिद्धांत में बेहद सूक्ष्म चीज़ों जैसेकि परमाणु, इलेक्ट्रान आदि का अध्ययन किया

जाता है। मूल रूप से ये दोनों सिद्धांत एक दूसरे से असंगत लगते हैं। इसलिए स्टीफन हॉकिंग ने एक सार्वभौमिक सिद्धांत (थ्योरी ऑफ़ एवरीथिंग) के विकास का प्रयास किया, जो प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक स्थिति में लागू हो। हॉकिंग का मानना था कि ब्रह्मांड का निर्माण स्पष्ट रूप से परिभाषित सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। उनका कहना था कि थ्योरी ऑफ़ एवरीथिंग हमें इस सवाल का जवाब देने के लिए काफ़ी होगा कि ब्रह्मांड का निर्माण कैसे हुआ, ये कहां जा रहा है और क्या इसका अंत होगा और अगर होगा तो कैसे होगा? अगर हमें इन सवालों का जवाब मिल गया तो हम ईश्वर के मस्तिष्क को समझ जाएंगे।

स्टीफन हॉकिंग का मानना था कि परग्रही प्राणी यानी एलियन हमारे ब्रह्मांड में निश्चित रूप से मौजूद हैं, मगर उनका यह भी कहना था कि बेहतर होगा कि मानवजाति उनसे संपर्क करने का प्रयास न करें क्योंकि एलियंस हमारे लिए खतरनाक साबित हो सकते हैं, वे संसाधनों के लिए पृथ्वी पर हमला कर सकते हैं और यदि वे तकनीकी दृष्टि से हमसे समृद्ध प्राणी हुए तो उनके कारण संपूर्ण मानवजाति संकट में पड़ सकती है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि ताकतवर ने हमेशा कम ताकतवर को अपने अधीन किया है, इसलिए हॉकिंग का कहना था कि हमे परग्रही प्राणियों से सावधान रहना चाहिए।

स्टीफन हॉकिंग ने लियोनार्ड म्लोदिनोव के साथ लिखी अपनी पुस्तक 'द ग्रैंड डिजाइन' में यह तर्क दिया था कि सदियों से यह विश्वास किया जाता रहा है कि ब्रह्मांड अनादि–अनंत है जिसके पीछे यह उद्देश्य था कि उसकी उत्पत्ति के बारे में कोई विवाद न हो। दूसरी ओर कुछ का विश्वास था कि इसकी एक निश्चित शुरुवात हुई थी और उन लोगों ने उस तर्क का प्रयोग ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने में किया। आधुनिक ब्रह्मांड विज्ञान का यह विश्वास कि काल दिक् की तरह व्यवहार करता है, एक नया विकल्प प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। इससे लंबे समय से चली आ रही यह आपत्ति तो दूर हो जाती है कि ब्रह्मांड की कोई शुरुवात हुई थी बल्कि इसका यह अभिप्राय भी है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति भौतिक विज्ञान या प्रकृति के मूलभूत नियमों के अधीन हुई थी, इसलिए इसको उत्पन्न करनेवाले किसी रचयिता या ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। हॉकिंग और लियोनार्ड म्लोदिनोव के उक्त विचारों से संपूर्ण विश्व में बड़ी खलबली मच गई थी। और दोनों की काफी आलोचना भी हुई।

हॉकिंग ने यह सिद्ध करने के बाद कि विलक्षणता (सिंगुलैरिटी) की स्थिति से ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई थी, (इस सिद्धांत को तबतक विज्ञान जगत में सामान्य स्वीकृति मिल चुकी थी) उन्होंने यह मत प्रस्तुत किया कि चूँकि ब्रह्मांड की कोई भी सीमा नहीं है, इसलिए ब्रह्मांड अनादि–अनंत है। इसी कारण से विलक्षणता की स्थिति हो नहीं हो सकती! ऐसे ही एक बार उन्होंने अपनी गणनाओं से यह निष्कर्ष निकाला था कि ब्लैक होल का आकार सिर्फ़ बढ़ सकता है और ये कभी भी घटता नहीं है, मगर बाद में उन्होंने बड़ी मेहनत से अपने आपको गलत सिद्ध कर दिया!

स्टीफन हॉकिंग का दावा था कि हिग्स बोसॉन कभी भी खोजा नहीं जा सकेगा। बाद में लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर के एक प्रयोग में हिग्स बोसॉन को खोज लिया गया। हॉकिंग ने तुरंत अपनी गलती मान ली तथा हिग्स बोसॉन की खोज के लिए पीटर हिग्स को बधाई दी। हॉकिंग विज्ञान की निरंतर प्रगतिशीलता और मौलिकता में विश्वास करते थे, 'मुझसे गलती हो गई' यह कहना अपने आप में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। हॉकिंग ने हमे बता दिया कि विज्ञान में कोई भी सर्वज्ञानी नहीं होता!

स्टीफन हॉकिंग को 13 मानद उपाधियाँ और अमेरीका का सर्वोच्च नागरिक सम्मान प्राप्त हुआ था। उन्हें ब्रह्मांड विज्ञान में उत्कृष्ट योगदान के लिए अल्बर्ट आइंस्टाइन पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए थे। मृत्यु के बाद हॉकिंग को आइजैक न्यूटन और चार्ल्स डार्विन जैसे महान वैज्ञानिकों के बेस्टमिस्टर एब्बे स्थित कब्र के बगल में दफनाया गया।

हिन्दी-कविता

थोड़ी सी रह जाती है माँ

अज्ञात

माँ कभी नहीं जाती
जाती नहीं कहीं
जाने के बाद भी
थोड़ी सी रह जाती है माँ
माँ रह जाती है
थोड़ी अशेष यादों में
थोड़ी रसोई की खुशबू में
थोड़ी पुरानी जरी की साड़ियों में
थोड़ी तांबे के बर्तनों की चमक मे
माँ कभी नहीं जाती
माँ रह जाती है

थोड़ी सिंदूर की डिबिया में
थोड़ी हाथ से बनाये स्वेटरों में
थोड़ी ब्लेक एन्ड व्हाइट एलबमों में
थोड़ी डोरी लगे चश्मे में
माँ कभी नहीं जाती
माँ रह जाती है
थोड़ी माला के घिसे मनकों में
थोड़ी बेटियों में बंटे गहनों में
थोड़ी डायरी में लिखे हिसाब में
थोड़ी अचार की रेसिपी में
माँ कभी नहीं जाती

माँ रह जाती है
थोड़ी सहेज रखे खिलौनों में
थोड़ी तुलसी की जड़ों में
थोड़ी हरजस की पंक्तियों में
थोड़ी देवी देवताओं के चित्रों में
माँ कभी नहीं जाती
माँ कभी नहीं जाती
जाती नहीं कहीं
जाने के बाद भी
थोड़ी सी रह जाती है माँ...

Agriculture

Banana An Efficient Crop for Multiplying Farmer Income

❑ **Mohd Sharik*, Jyoti Singh and R.S. Sengar**

Introduction

Banana (2n=3x=33, AAB) is a perennial herbaceous monocot which belongs to Musa genus of the Musaceae family. Banana could be cultivated under sub-tropical conditions if the planting time is regulated in such a manner that bunches are initiated in summer, shot in autumn and mature in winter. It is believed to be one of the oldest fruits which have originated through a complex hybridization process from Malaysia. Cultivated banana is a triploid derived from two diploid species i.e. *Musa acuminata* (Malaysia) and *Musa balbsiana* (India). Banana represents the world's second largest fruit crop and fourth most important global food crop with an annual production over 100 million metric tons. Banana plants are usually propagated by suckers which grow from lateral buds originating from corms, and suckers are used for production of individuals plants.

Bananas are vigorously growing monocotyledonous perineal herbaceous plants. The banana plant is a gigantic herb that springs from underground stem rhizome and attain up to 15 meters of height. The cultivars are differing from each other in terms of quality, greatly in plant and fruit size, plant morphology, fruit quality and disease and insect resistance. The trunk is composed of the basal portions of leaf sheaths and is crowned with a rosette of 10 to 20 oblong to elliptic leaves that sometimes attain a length of 3.0-3.5 meters and a breadth of 65 cm. A large giant flower spike, which carrying numerous yellowish flowers bud are protected by large purple-red bracts, emerges at the top of the pseudo-trunk and bends downward to become bunches of 60 to 160 individual fingers or fruits. The individual fruits, or bananas, are grouped in bunches, or hands of 10 to 22 in number. After a plant has

Kingdom	Plantae-Plants
Sub-Kingdom	Tracheobionta- Vascular plants
Super division	Spermatophyta- Seed plants
Division	Mangoliophyta- Flowering plant
Class	Liliopsida- Monocotyledons
Subclass	Zingiberidae/ Liliidae
Order	Zingiberales
Family	Musaceae- Banana family
Genus	*Musa*
Species	*M. acuminata, M. balbisiana*

Table 2.1: The Five Kingdom Classification of Banana

Character	*M. acuminate*	*M. balbisiana*
Pseudo stem	More or less heavily marked with black or brown blotches	Blotches slight or absent
Petiolar canal	Margin erect or spreading with scarious wings below, not clasping pseudo stem	Margins not winged below, clasping pseudo stem
Peduncle	Usually down or hairy	Glabrous
Pedicles	Short	-
Ovules	Two regular rows in each locule	Four irregular rows in each locule
Bract shoulder	Usually high ratio (0.28)	Usually low ratio (0.30)
Bract curling	Bract roll	Bracts lift but don't roll
Bract shape	Lanceolate or narrowly ovate tapering sharply from the shoulder	Broadly ovaue, not tapering sharply
Bract apex	Acute	Obtuse
Bract colours	Red dull purple or yellow inside pink, dull purple	Distinctive, brownish purple outside; bright crimson inside
Colours fading	Inside bract colours fades to yellow towards base	Inside bract colour s continues to base
Bract scars	Prominent	Scarcely Prominent
Free tapal of male flower	Variably corrugated below tip	Rarely corrugated
Male flower colours	Creamy white	Variably flushed with pink
Stigma colours	Orange or rich yellow	Cream, pale yellow or pale pink

Taxonomic scoring of banana cultivars

Dept. of Agri Biotech, Sardar Vallabhbhai Patel University of Agriculture and Technology, Meerut, India (250110).
Corresponding author e-mail: shariqchauhan9760@gmail.com

produce mature fruited bunch, it is cut down to the ground, because each trunk produces only one bunch of fruit. The deceased trunk is succeed by others in the form of suckers, or shoots, which arise from the rhizome at roughly six-month intervals. The life-cycle of a single rhizome continues for several years, and the weaker suckers that it sends up through the soil are periodically removed after each harvesting, while the stronger ones are allowed to grow into fruitproducing plants for next seasons.

Taxonomy of Banana

Banana belongs to the family Musaceae. Besides *Musa*, another genus is this family is *Ensete*. The family is characterized by leaves and bracts spirally arranged; male and female (hermaphrodite) flowers separated within one inflorescence; fruit is a many seeded berries. The old scientific names for most groups of cultivated bananas are *Musa acuminata* Colla and *Musa balbisiana* Colla for the ancestral species, and *Musa paradisiaca* L. for the hybrid *M. acuminata* vs *M. balbisiana.*

The tender stem, which bears the inflorescence is extracted by removing the leaf sheath of the harvested pseudo stem and used as vegetable. Planting or cooking bananas are rich in starch and have a chemical composition similar to that of potato. Banana fibers is used to make item like bags, pots and wall hanger. Banana waste can also be utilized to produce rope and good quality paper. Banana leaves are also used as healthy and hygienic eating plates thus, eco-friendly in nature.

Plant Morphology

Banana plant could be found very easily in one's back yard or kitchen gardens as they easily cultivable and its one of the largest herbaceous flowering plant. It can grow up to 6 to 6.7 meters (20 to 24.9 ft) tall its leaves can grow up to 2.7 meters (8.9ft) long and 60 cm (2 ft) wide. The banana plant is a wide perennial herb with leaf sheaths that give rise to trunk like pseudo stems. The plant has 8-12 leaves that are up to 9-10 ft long and 2-2.5 ft wide. Root development may be extensive in loose soil in some case up to 30 ft laterally. Other plant descriptions vary, its depend on variety. Flower development get initiated from the true stem underground (corm) 9-12 months after planting. The inflorescence grows through the center of pseudo stem. Flower develop in cluster and spiral around the main axis. In most cultivars, the female flowers are followed by a few "hands" of neuter flowers that have aborded ovaries and stamens. The neuter flowers are followed at terminal end by male flower enclosed in bracts. The male flowers have aborded ovaries but functional stamens. Fruits mature in about 60 to 90 days after flower first appear. Each bunch of fruit consist of variable number of "hands" along a central stem. Each "hand" consists of two transverse rows offinger (fruits). The fruit quality is determined by fruit size (finger length and thickness), evenness of ripening, freedom from blemishes and defects, and the arrangement of clusters. Quality standards may differ in various markets.

Area and Production

Banana is the second largest produced fruit while citrus ranked first, adding about 16% of the world's total fruit production. India is the largest producer of banana, contributing to 27% of world's banana production. By the way,banana production in India has surpassed mango production. In India, Tamil Nadu is the largest and leading producer of banana, followed by Maharashtra. After cereals, sugar, coffee and cocoa, Bananas are the fifth largest agricultural commodity in world trade. India, China, Brazil and Ecuador alone produce half of total bananas of the world. The availability round the year is themajor advantage of this fruit. Globally Banana is grown on 5.69 million hectares with the annual production of 106.83 million tons with an average yield of 18.78 tons/ha while the area and production of banana in India is 0.8 million hectare and 29.72 million tons with an average yield of 37.15 tons /ha. It is grown in large quantities in the states of Tamil Nadu, Maharashtra, Gujarat, Andhra Pradesh, Karnataka, Madhya Pradesh, Bihar, Uttar Pradesh, West Bengal and Assam. It is also an important foreign exchange gainer for India. India has become one of the largest exporters of banana worldwide. Indian banana now exported to United Arab Emirates, Saudi Arabia, Iran, Kuwait, Bahrain, Qatar, Oman, Nepal, Maldives and United states.

Nutrition

Banana is considered to be one of the most important sources of energy and starchy staple food for the people of tropical humid regions. Furthermore, bananas and plantains are rich in nutrients. Banana fruit contain water (70%) carbohydrate (27%), crude fiber (0.5%), protein (1.2%), fat (0.3%), ash (0.9%), calcium (80 ppm), phosphorus (290 ppm), iron (6 ppm), carotene (2.4 ppm), thiamine (0.5%), riboflavin (0.5 ppm), niacin (7 ppm) and ascorbic acid (120 ppm). Plantains are nutritionally low protein food material but relatively high in carbohydrates (70%), vitamins and minerals. Bananas are considered as a rich source of vitamin A, B complex, C, manganese, potassium and digestible food fibers are present in the fruits in sizeable levels.

Agro Climate & Soil

Bananas requires a warm sub-tropical climate, sufficient moisture and protection from wind. Most of the varieties of Bananas grow best with minimum 12 hours of bright light and high humidity of 60% or higher. The ideal temperature range is around 26-31°C (78-86F) with RH regime of 75-85%. Growth begins at 18ºC, reaches optimal growth at 27ºC -28ºC and stop entirely when temperature reaches around 38ºC. Although Bananas grow optimum in bright sunlight, high temperature will scorch fruit and

leaves. For best appearance and increased photosynthetic rate, wind protection is always advisable. High velocity wind which exceeds75-80km per hour damages the leaf. Bananas are also supposed to being blown over due to the weight of the stem of fruit. Thus, Propping must be done during the last 2-3 months of its life cycle before harvest.

Soil

Bananas requires rich, moisture and well-drained soil with 40% clay, 75% silt, 85% loam and higher in organic content. Bananas prefer a more acidic soil with pH between 6-7.5 over basic soil. Low pH soil prone to banana more susceptible to Panama disease. Avoid soil that is unproductive, unfertile, sandy, salty, nutritionally deficient and ill-drained soil. If soil is not in the most favorable condition, improve it with agronomical, cultural, physical measures such as Light sandy soil can be improved by placing mulch around the Banana plants. This will lead to improve water retention and also prevent nutrients from percolating rapidly into the soil. Nutritionally deficient soil can be overcome by incorporating organic matter- green manure crop, to the soil before you plant your Bananas and then mulch them thickly. This process should be repeated as often as you can do. Bananas do not tolerate abiotic stress such as waterlogging because its roots will rot. This however can be re by planting the Bananas in raised beds.

State	Major Varieties grown
Andhra Pradesh	Dwarf Cavendish, Robusta, Rasthali, Amritpant, Thellachakrakeli, Karpoora Poovan, Chakrakeli, Monthan and Yenagu Bontha
North Eastern States	Jahaji (Dwarf Cavendish), Chini Champa, Malbhog, Borjahaji (Robusta), Honda, Manjahaji, Chinia (Manohar), Kanchkol, Bhimkol, Jatikol, Digjowa, Kulpait, Bharat Moni, Sabri
Bihar	Dwarf Cavendish, Alpon, Chinia, Chini Champa, Malbhig, Muthia, Kothia, Gauria
Gujarat	Dwarf Cavendish, Lacatan, Harichal (Lokhandi), Gandevi Selection, Basrai, Robusta, G-9, Harichal, Shrimati
Jharkhand	Basrai, Singapuri
Karnataka	Dwarf Cavendish, Robusta, Rasthali, Poovan, Monthan, Elakkibale, Nanjangudrasabalehannu
Kerala	Nendran (Plantain), Palayankodan (Poovan), Rasthali, Monthan, Red Banana, Robusta
Madhya Pradesh	Basrai
Uttar Pradesh	Grand Naine, Dwarf Cavendish, Alpon, Chinia, ChiniChampa
Maharashtra	Dwarf Cavendish, Basrai, Robusta, Lal Velchi, Safed Velchi, Rajeli Nendran, Grand Naine, Shreemanti, Red Banana
Orissa	Dwarf Cavendish, Robusta, Champa, Patkapura (Rasthali)
Tamil Nadu	Virupakshi, Robusta, Rad Banana, Poovan, Rasthali, Nendran, Monthan, Karpuravalli, Sakkai, Peyan, Matti
West Bengal	Champa, Mortman, Dwarf Cavendish, Giant Governor, Kanthali, Singapuri

Source: http://nhb.gov.in/report files/banana/BANANA.htm

Different banana varieties grown in different states

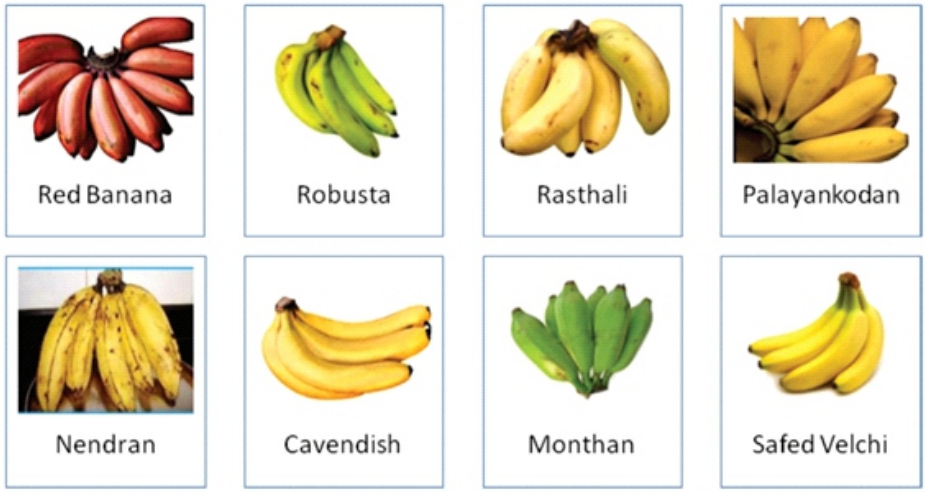

Genomic constitution of different Banana cultivar

Varieties

Bananas comes in many varieties;therefore, selection of the species and varieties should be based on its market demand and yields. The most commonly cultivated Bananas in Malaysia are Berangan and Covendis and the remaining popular cultivars are Emas, Rastali, Raja Awak, Abu, Nangka and Tanduk.

In India bananas are distributed in southern, eastern, central and north eastern parts within 800 and 300 N latitudes. Major genomic groups and cultivars are AA group:

AA-Anaikomban, Matti, Kadali, Tongat, pisanglilin.

AB- Ney poovan (Elakki bale),

Kunnan, Nathu Poovan. Thaen kunnan, AdakkaKunnan.

AAB- Poovan, Rasthali, Pachanadan/Kaali/Galibale, Nendrapaditha, Rajapuri, Virupakshi/Sirumalai, Nendran/Rajeli, Chinali.

AAA- Dwarf Cavendish/Basrai, Giant Cavendish, Robusta, Gross michel, Grand naine, William, Nagabale, Chenkadali/Red banana, Chakkarakeli, Amrit sagar.

ABB- Nalla Bontha, Monthan/Kanchkela, Keribontha, Peyan, Karpuravalli, Sugandhi.

AAAA- Bodles Altafort, IC-2.

ABBB-KlueTaparod

AABB-Kalamagol

AAAB- Atan, Goldfinger (FHIA).

Characteristics of different varieties of banana-

Ney poovan/Elakkibale (AB): It is commercially cultivated in Kerala and Karnataka and minorly other south Indian state. The plants are medium stature, with slender, light yellowish pseudostem, having reddish petiole margin.Fruit is small flesh firm, sweet and highly fragrant.

Kunnans (AB): It is a back yard and kitchen garden cultivar of Kerala and Karnataka.The plants are medium stature and slender fruits with firm pulp with sweet taste.It is commonly used as infant food after conversion into banana flour.It is moderately tolerant to leaf spot and fusarium wilt.

AAA group: Cavendish sub-group

Dwarf Cavendish/Basrai (AAA)-It is the most important commercial cultivar of India and the plant of this group is dwarf, large fruit, curved, skin thick and greenish, flesh soft and sweet.

Even after ripening the fruit is slightly greenish in colour, while fruits ripening during winter season develop yellowish colour.The keeping quality is not so good; The average bunch weight is about 20-22 kg and suitable for high density planting, and susceptible to leaf spot disease.

Musa dwarf cavendish

Musa 'Super Dwarf' Cavendish

Gross Michel (AAA)

It is the main cultivar of this sub-group.Gross Michel was the leading cultivar in the world banana trade until the late 1950 and now this variety has lost its commercial status due to susceptibility to panama wilt.

Red Banana Sub-group

Red Banana (AAA)

This cultivar is grown throughout the globe.The colour of the pseudostem, petiole, midrib and fruit peel are purplish red is the main features of this group.The fruit is of good size and has a characteristic specific aroma.The average bunch weight is 20 kg.It lies well in humid tropics and at higher altitudes.It is moderately susceptible to fusarium wilt, bunchy top and nematode.

Red Banana

Silk Sub-Group

Rasthali (AAB)-It is one of the most popular commercial choicest table cultivars of West Bengal, Karnataka, Tamil Nadu,Kerala, Andhra Pradesh, and Bihar.The plant is tall and can be easily recognised by the yellowish green stem with brownishblotches.

Rasthali-

Reddish margins of the petiole and leaf sheath is the major characteristics features of that group.The average bunch weight is about 12 kg.Fruits are medium sized, skin-thin, yellowish in colour flesh firm, sweet with a nice aroma.It has the demerit of longer duration, severe susceptibility to fusarium wilt, easy dropping of fruits from bunch.Susceptible to sun injury and formulation of hard lumps in the pulp are also constrains.

Mysore Sub-group

Poovan/Champa (AAB)

The plant is hardy tall, and grows vigorously, one of the distinguishing features of the plant is the rose-pink colour on the outside of midrib, fruit is medium to small, yellowish skin firm flesh with sub-acidic nature in taste, keeping quality also good, the average bunch weight is about 16kg.It is highly resistant to panama wilt disease and slightly resistant to bunchy top but highly susceptible to banana bract mosaic and streak virus.

Planting/Planting Material

The best way is to start banana cultivation is with tissue culture plantlets. Tissue culture plantlets are recommended for planting because these are disease and pest free while, suckers, in general, are contaminated with few soil-borne pathogen and nematodes. Tissue culture plantlets are uniform, healthy, pest and disease free, and shorter harvesting period.These plants needs much care throughout the growth period compare to suckers plantains and yields about 10-20 per cent more than suckers.

In recent years the concept of HDP is being adopted and practiced, suckers are planted at closer spacing or planting two suckers per pit by accommodating a larger number of plants at specified spacing to get higher yield and minimize the cost of production.The cultivar Robusta and Dwarf Cavendish planted at 1.5 x 1.5m accommodates 4444 plants/ha is recommended by IIHR was recorded highest yield.

Tissue culture raised banana plant ready to transplant

Planting Time

Tissue culture Bananas can be planted round the year.

Nutrients Required by Bananas

Bananas demand nitrogen, phosphorus, potassium with a balanced ratio of 3:1:6 and other micronutrients to ensure the plants grow vigorously.

Crop Geometry

The most economical and efficient spacing is about to 1.82m x 1.52m with 3,630 plants per hectare (a wide spacing of 1.82 m between rows). Although, the above spacing is only possible with fertigation. Bananas can also be planted with higher density at 1.5m x 1.5 m but yields are poor due to competition for sunlight and other growth factor. The recommended spacing is at 2.0m x 2.5m with 2,000 plants per hectare because that is the standard distance to minimize Sigatoka.

Planting Method

20% of perlite should be mixed with the soil for best growth. Depending on the soil quality, one must apply the appropriate method as well as the depth and spacing at which plants are needs to be planted.

Step 1:identify and mark the spots where the plants will be planted. Avoid marking and planting as you go because any oversight may lead to uneven spread of the Bananas. The best method to avoid this from happening is to use a long measuring scientific tape.

Step 2: Dig a hole with a Fawda in diameter and ten to twelve inches deep and place the plants in the hole while keeping the pseudo-stem 1 inch below the ground level.

Step 3: Toss a small amount of NPK into the hole to enhance the growth of the plant and fill the hole with enrich soil. Soil around the plant should be tramped down firmly to remove each air pockets/

Maintenance

Fertilizing

A complete fertilizer with a ratio of 3:1:6 of nitrogen, phosphorus, potassium is suggested and suitable for most Banana plantation. The first application of fertilizer at the rate of 100 grams per plant can be made as soon as the plant begins to grow or at the time of transplanting. Succeed application of fertilizer should be applied as frequent as possible i.e. once every 10-12 days if possible. The best aptitude is to apply small quantity of NPK, but more frequently. Organic fertilizers should apply for better taste and quality. fertigation isadvisable to water and fertilize at the same time to help Bananas grow. If there is uncertainty in water system (i.e. fertigation or pipes), the best time for application of fertilizer is after rain.

Important note: Fertilizer should be applied at one inch away from the leaf and not directly on the stem of the plant for better result. It is supposed to that Banana roots grow approximately an inch everyday (at an optimal growth). On sloping terrain, apply fertilizer only on the up-hill side.\

Mulch

Mulch application is used to alter the effects of the local climate. A vast variety of synthetic and materials are used. The most easily available and cheaper material would be saw dust. For optimum result, it is best applied when the plants are still young to encourage faster growth. The benefit of using mulch is that it conserves soil moisture (blocking evaporation of water from the soil) help to keep weed free land and keeps soil cool as they block direct sunlight exposure. It alsoreduce the growth of weeds as it blocks the weeds from receiving sunlight thus minimizing intensive labor work.

The mulch should be kept at least 50-55 cm from the base of the plant as it generates heat when decomposing. This practice is known to minimize bacterial and fungal diseases while improving soil texture and adding nutrients and organic matter to the soil. Usually, mulch is only needing to be applied once as mature plantation is self- mulching i.e. dead Banana leaves and trunks are eliminated and left behind as naturally mulch.

Weeding

We should always try tokeep the plantation weed free. Banana plants grow notably slower with the availability of weeds because partial of the water and nutrients are absorbed by the weeds thus, hardening the cultural operation. Five or seven manual weeding should be sufficient after which the growth of weeds is rather impossible when Banana plants reached mature size. Alternatively, mulching is suggested to reduce the growth of weed.

Water Management

Water Management – Fertigation

Bananas require a great quantity of water to grow. conventionally, farmers provide nutrients to the plants by applying fertilizer in the form of pellets. While it is less expensive, it is labor intensive and ineffective because nutrients may evaporate or leach after application. The most effective manner in water management is drip irrigation with fertigation. Drip irrigation coupled with application of mulch has proven to increase water efficiency with saving of 60% of water and increase yield by 25 – 35%. However, distribution of nutrients is uniform under fertigation.

Generally, Bananas require a minimum of 1800 – 2500 mm annually or 25 mm per week. Deep watering is essential during draught to help leach the soil of salt. It is common that Banana plants do not bear fruit if proper water is not supplied. While Bananas needs large amount of water; do not over irrigate them. Excessive water will cause roots to rot – Banana roots are poor withdrawal of water.

Intercrop

Intercropping can be profitable if the crop is leguminous, short duration crops (45-60 days) can be planted between rows of plants. Moreover, intercropping is only possible during early stage of the plantation.

Growth and development of crop

During the life cycle, the plant produces 32-40 at 4 leaves per month depending on cultivar.The last leaf produced at shooting, small in size is called flag leaf.The first characteristics feature between vegetative and reproductive phase is the production of bract primordium.The basal (proximal) nodes of the inflorescence bearupper (distal) nodes contain male flowers and female flower. In between female and male buds, hermaphrodite flowers and have stunt ovaries and do not develop in to edible fruit.Banana fruit botanically known as berry.The edible bananas are vegetative parthenocarpy, the female sterility gene and lack of pollen due to triploidy causes seedless nature.While pollination is must for normal fruit development in the wild seeded bananas.

Use of plant growth regulators

The process of flowering induction regulated by Gibberellin like substances helps in development of plant, later on anthecin hormone inducing flowering of plant, both combining called as "Dual factors hypothesis".Spraying of NAA at 100 ppm after 5 or 6, 7 months of planting markedly increases fruit quality, size and yield. Spraying of 2-4 D@ 20ppm also caused increased the quality of fruits.It is poured/applied in the growing apex, then bunch will have more offingers/female flowers.Application of GA3 at 50mg/L resulted in maximum yield and required a short for fruit maturity in Giant Governor Banana.

Special Operation

The following practices would directly affect the productivity and quality of the Banana plants.

i) Desuckering / Pruning- One mother plant and two followers should be kept. Keeping too many sucking plants will reduce quality and yields. It is suggested to eliminate all suckers once the desired followers have been selected. An age interval of 2-2.5 months between the mother plant and subsequently each of the followers is most desirable because these followers will become your main stem after the mother plant fruits. The most efficient method to permanently remove unwanted suckers is to cut the stem off the ground and then cut into the center of the plant. This should kill the sucker.

ii) Propagation- The alternative practice of pruning is propagation of bananas. Instead of destroying the suckers, suckers could be removed from the clump and replanting it in a newly cultivated land. Large suckers called the "sword sucker" are the most preferred planting material. When removing the undesirable suckers, it must be cut into the mother plant enough to unearth some roots. Leaves are often removed in the process for easy transportation, handling and re-planting. These suckers must be re-planted within a day or two and must not be exposed to the sun. Otherwise, the roots may dry up.

iii) Deflowering- Removal of the "Bell" (the purple flower petals at the end of the bunch – also known as "banana blossom" or "banana heart "). This is usually practiced because this way, Banana plant will conserve its energy into growing bigger bunch and no longer stalk.

iv) Pruning of leaves-old leaves and infected leaves should be pruned out regularly. This will reduce the likelihood of various leaf diseases and keeps the plantation tidy and healthy. Furthermore, it provides natural mulch to the Banana plants.

v) Earthing up- Soil level should be raised after 2.5- 3 months of planting to keep soil loose. This will also help prevent Banana plants from falling due to severe wind.

vi) Mattocking- It is the practice of cutting the pseudostem after harvesting of bunches.

After harvesting, the pseudostem must be cut leaving a stump of about 0.6m hight, the left-over stump with its stored food material continues to nourish the daughter sucker (follower) till it withers and dries up.

vi) Removal of female hands- Remove the last one to two hands of the bunch. Banana producer often remove the bottom female hands so that the remaining hands grow bigger as it enhances and fruit development and increases bunch weight.

vii) Bunch Covering-Bunch covering boost the weight and enhances quality of fruit. Conventionally, Banana growers protect the bunch from sunburn by placing dry leaves on the top hand of the bunch but this is not practicable during rainy season and also time consuming. Commercial growers however, use blue plastic sleeves. This practice is to protect Bananas fromsunburn diseases, insects, , spray residue, dust and birds. Covering the Banana bunch also increases the temperature within which helps in early maturity.

viii) Propping Support Banana plants with bamboos- Banana plants often go off balance due to the heavy weight of the bunch at the time of nearly maturity. Therefore, two

bamboos should be propped by placing one against the top of the bunch and the other against the stem on the leaning side to prevent the plants to fallen off. Propping using only one bamboo is not suggested as the Banana plant may plunge to the other direction during strong wind.

Pest and Disease Management

Pest and disease management Bananas are prompt to viral diseases, fungal diseases and pest thereby reduces production, quality and yield.

Pests

Pseudostem borer-most of the commercial cultivars are heavily affected by the borer.Exudation of plant sap is the initial symptom and blackened mass comes out from the holes bored by the larvae.

Rhizome weevil-Nendran is highly susceptible, damaged corms show feeding tunnels filled with mass of rotten tissues.

Banana aphid-vector of the virus disease bunchy top

Fruit and leaf scarring beetle-The beetle feeds on young leaves and skin of young fruits, occurrence is maximum in rainy season and less in winter.

Diseases

Panama wilt - *Fusarium oxysporium*F.sp*cubens*, It is the most severe, harmful and important disease of banana. Rasthali is highly susceptible cultivar. It is serious in poorly drained soil. Resistant varieties are Dwarf Cavendish and Robusta.

Leaf spot/Sigatoka – It is a fungal caused disease, initially,presence of light yellowish spots on the leaves under moderately condition formation of brown spots and later dies, turning light grey surrounded by a brown ring. The Cavendish and Gros Michel group are all highly susceptible to sigatoka. While, all ABB clones are resistant.

Banana bunchy top virus (BBTV):

Transmitted by aphid vector, *Pentalonianigronervosa*. The dwarf banana cultivars are Susceptible. The leaves are bunched together like a rosette at the top, the margins are wavy androlled upward. Dark green streaks of the lamina or midrib. The plants are stunted and do not produce bunch of market value. Some of the other diseases are Pseudostem heart rot, Diamond spot, Anthracnose, Cigar end tip rot, Crown rot, Bacterial soft rot, Bacterial wilt or moko disease, banana streak virus, banana bract mosaic virus etc., causing damage to banana plants.

Fruit maturity and harvest

Harvest, when fingers are fairly evenly rounded. General practiceto harvest when fingers of second hand are ¾ rounded. Alternative, for tree-ripened fruit, cut only those hands that are ripen and leave the remaining for other day. These Bananas taste the best

It is suggested to place harvested bunch in well-padded basket before transporting to the collection site because Bananas are easily bruised and this will inevitably reduce the quality of the fruit. Once harvested, the bunch should be kept out of light, in cool and shady place. The process of ripening can be done by covering the bunch with plastic sleeve together with a ripe fruit as it releases small amount of heat and ethylene which helps initiate and stimulate ripening. Depending on the demand of the market, hands are often cut into units of 6 – 15 fingers or left on stalks and sold to retailers.

Under favourable conditions, banana starts flowering in 9-12 months and fruits matures in about 4-5 months depending upon varieties, climate etc. Banana are harvested at 3/4th maturity stage for distant markets or for chips making purpose while, for local markets are harvested at full maturity.

The following are the indications of maturity of banana.

- Drying of top leaves.
- Changing of fruit colour from green to light green.
- The floral ends of fruits are shed with slight hand touch at apices.
- Fruit become plumpy and angles are filled & disappear.
- One or two fruits ripe at the basal end (yellow colour).
- Starch content of the fruit (22-25%).

The bunches are to be harvested by leaving 2 ft of peduncle on the bunch.

Yield

Yield of banana varies with variety, depend on production practices.Tall cultivars usually yield 15-20 tones/ha.Cavendish group varieties yield about 40t/ha, whereas the hill banana/cooking varieties yield about 11-15 tones/ha.

Storage

Keep Bananas refrigerated and ripening process can be delayed if you refrigerate it. The skin of the fruit will turn dark but the flesh remains firm. Conversely, do not store Bananas below 13°C because it will stop its ripening process (at that temperature

Bananas do not emit heat or ethylene).

Banana can be stored at about 13C with the Relative Humidity of 85-95 per cent for approximately 20 days and is ripened in a week at 16.5-21.0C.The ripened fruits should not be stored / shifted under refrigerated condition.The shelf-life can be increased by keeping the fruits in high concentration of carbon dioxide and low concentration of oxygen.

Also storing in sealed polythene bags containing ethylene absorbent like potassium permanganate.Shrink film wrapping or Waxol (12 per cent) treatment can extend shelf life up to 3 weeks.Mostly bananas are not allowed to ripen on the tree; Smoking done with straw, leaves & cow dung in a closed chamber for 18-24 hours in summer and 48 hours in winter and later shifted to ventilated room for uniform ripening.The exogenous application of 100 ppm ethylene gas in an enclosed chamber for 24 hrs for will produce ripening anduniform colour.

Post-Harvest Handling

Post-harvest handling for export market, Bananas bunch are generally dehanded and soaked in dilute sodium hypochlorite solution to remove the latex and then treated with thiobendasole. Both sodium hypochlorite and thiobendasole are synthetic chemical compound or commonly known as bleach.

Note: Banana Planters has a strict policy of not using harmful chemical in the production or post-harvest process. Whilst the Banana skin may look grimy, it's safer to consume.

References.

Alagumani T (2005). Economic analysis of tissue cultured banana and sucker-propagated banana. *Agricultural Economics Research Review.***18:** 81-89.

Bachchan MT (2016). An economic analysis of tissue cultured banana and sucker propagated banana in India. *Global Journal of Pests, Diseases and Crop Protection.* 4**(5)**: 206-210

Baranwal VK, Saritha RK and Kapoor R (2015). Practical manual for ELISA and PCR based diagnostics for virus indexing. Referral centre for virus indexing of tissue culture raised plants. Advanced Centre for Plant Virology, Division of Plant Pathology, IARI, New Delhi, India.

Dafare P, Srivastav P and Soman P (2014). Banana tissue culture plantation with drip. The Success stories. Jain Irrigation Systems Ltd. (http://blog.jains.com/BANANA_Tissue_Culture_Plantation_with_drip_The%20Success%20stories.htm)

Daher RK, Stewart G, Boissinot M and Bergeron MG (2016). Recombinase polymerase amplification for diagnostic applications. *Clinical Chemistry* 62 *(7)*: 947-958.

Banana Facts and Figures. FAO (http://www.fao.org/economic/est/est-commodities/bananas/bananafacts/en/#.XLVsIkiYPbg).

Banana Link.
(http://www.bananalink.org.uk/all-about-bananas).

Encyclopedia Britannica.
(https://www.britannica.com/plant/banana-plant)

Export Genius (2018).
(https://www.exportgenius.in/blog/exports-of-banana-from-indiain-2017-indias-top-exporters-of-banana-246.php).

AO (2019). World Banana forum. (http://www.fao.org/world-banana-forum/projects/ fusarium-tr4/disease/en/).

FAOSTAT (2017). Banana Crop Production. The Food and Agricultural Organization of the United Nations (FAO), Rome, Italy

हिन्दी-कविता

उम्र की डोर से फिर

अज्ञात

उम्र की डोर से फिर
एक मोती झड़ रहा है....
तारीख़ों के जीने से
दिसम्बर फिर उतर रहा है..
कुछ चेहरे घटे,चंद यादें
जुड़ी गए वक्त में....
उम्र का पंछी नित दूर और
दूर निकल रहा है..
गुनगुनी धूप और ठिठुरी
रातें जाड़ों की...
गुज़रे लम्हों पर झीना–झीना
सा इक पर्दा गिर रहा है..
ज़ायका लिया नहीं और
फिसल गई ज़िन्दगी...
वक्त है कि सब कुछ समेटे
बादल बन उड़ रहा है..
फिर एक दिसम्बर गुज़र रहा है..
बूढ़ा दिसम्बर जवां जनवरी के कदमों मे बिछ रहा है
लो इक्कीसवीं सदी को बीसवां साल लग रहा है

Science

Heavy Metal Genotoxicity: An Insight to Human Disease

❑ Rashmi Srivastava[1], Nidhi Mishra[2], Neeshma Jaisawal[1], Shivji Malviya[3], Rajesh Bajpai[4]* and Rakesh Srivastava[5*]

Abstract

Consistent exposure of living forms to hazardous materials that damage the environment is one of the greatest threats to a technologically advanced community. As a result of the constant addition of a significant number of dangerous materials as a result of human activities and increasing industrialization, the genomic integrity of the exposed population is damaged. Heavy metals are naturally occurring elements with a high atomic weight and a density higher than 5 times that of water. The dose, method of exposure, and chemical species, as well as the age, gender, genetics, and nutritional state of those exposed, all influence their toxicity. Arsenic, cadmium, chromium, lead, and mercury are among the priority metals that are of public health concern due to their high toxicity. Even at modest levels of exposure, these metallic elements are considered systemic toxicants that can cause numerous health damage. This raises the risk of developing a variety of physiological illnesses or metabolic disorders, such as asthma, hypertension, liver and renal malfunctions, genetically driven malignancies, immunological and neurological disorders, either directly or indirectly.

Introduction

In today's technology-driven society human beings are consistently exposed to one or other health hazards such as food chemicals, pesticides, heavy metals, radiations, fungal and bacterial toxins, industrial wastes and toxicants which are continuously present in the environment. Many anthropogenic activities like mining, industrial processing, use of pesticides in agriculture, use of different types of equipment in medical field, etc. release toxic elements in the environment that ultimately accumulate in the food chain (Tchounwou, 2012). A handful of evidences suggest that thousands of chemicals in commercial production are being introduced recklessly into the ecosystem (Chou, 1987; Spiegel and Maystre, 1998). All these toxic substances induce cell injury and alter cellular integrity and the phenomenon that directly lead to alterations of the genetic material such as gene mutation, chromosomal aberrations, DNA damage and affect RNA of cellular components is called genotoxicity (Kastan and Bartek, 2004; Cavalieri et al., 2012). The mechanism of DNA damage and its type induced by genotoxicity is represented in Figure 1

A substance that is capable of causing genotoxicity is known as a genotoxin and mostly fall into the categories of chemical agents, radiation, heavy metals, and other like fungal and bacterial toxins. Usually, the term "genotoxicity" is often mixed up with "mutagenicity", however, it is an interesting fact that all mutagens are genotoxic, whereas not all genotoxic substances are mutagenic. The nitrogen mustard was the first example of a chemical mutagen, while other examples are the base analogs like bromouracil, aminopurines, nitrous acid, nitrosoguanidine, methyl methanesulfonate, ethylmethanesulfonate, intercalating agents that cause frameshifts mutations, for example, cisplatin, acridine orange, proflavin, ethidium bromide and agents that alter DNA structure like psoralens and peroxides. The various radiations act as mutagens are the ionizing radiation like X- and gamma-rays, and non-ionizing radiation like UV- rays (Blank and Goodman, 2011; Miyakoshi, 2013;

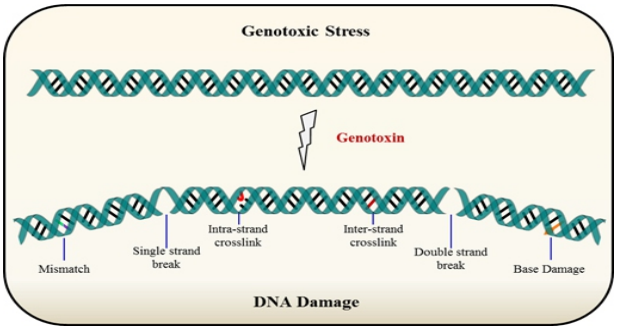

Figure 1: DNA damage types due to genotoxcity

[1]Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow
[2]Department of Zoology, Lucknow University. Lucknow
[3]Department of Zoology, Hemwati Nandan Bahuguna Degree College, Naini, Prayagraj
[4]PHSS, Foundation for Science and Society, Lucknow
[5]Microbiology and Molecular Biology Division, Gentox Research and Development, Lucknow, Uttar Pradesh,
(Email: raakeshshrivastav@yahoo.com)
*Corresponding author
bajpaienviro@gmail.com, raakeshshrivastav@yahoo.com

Scenihr, 2015; Almaqwashi et al., 2016). Apart from these genotoxic agents, some heavy metals such as copper, bismuth, cadmium, chromium, lead, arsenic, mercury and their compounds are known to have genotoxic properties (Errol et al., 2006; Jaishankar et al., 2014; Mishra et al., 2016; Nagpure et al., 2016).

The cells of our body protect against the genotoxic mutation either through DNA repair mechanism or by inducing apoptosis, however the damage when unrepaired cause mutagenesis resulting in severe diseased conditions such as neurodegeneration and cancer (Torgovnick and Schumacher, 2015). The assessment of the effects of genotoxins is based on the level of DNA damage in cells exposed to toxicants that can be either in the form of single- and double-strand breaks or loss of excision repair, cross-linking, alkali-labile sites, point mutations, structural and numerical chromosomal aberrations, instability of the genetic causing several diseases (Coussens and Werb, 2002; Bajpayee et al., 2005; Colotta et al., 2009). Hence, numerous advanced techniques including the Ames assay, *in vitro* and *in vivo* toxicology tests, comet assay, and micronuclei test have been well established to evaluate the genotoxic potential of various types of toxicants that cause DNA damage or instability leading to diseases (Tice et al., 2000; Mishra et al., 2016). According to the World Health Organization. the majority of them are heavy metals, such as lead, mercury, arsenic, and cadmium. Some common trace elements are required in minute amounts by humans (Co, Cu, Cr, Ni, Se, Fe, Zn), while others are carcinogenic or toxic, affecting the central nervous system (Hg, Pb, As), the kidneys or liver (Hg, Pb, Cd, Cu), or the skin, bones, or teeth (Ni, Cd, Cu, Cr) and causing lung, heart, and kidney diseases. Several metal ions interact with DNA and nuclear proteins and are potential source of DNA damage and genetic alterations leading to cell cycle changes, carcinogenesis or apoptosis.

Environmental contamination of heavy metals has shown to play a major role in the progression of certain deadly diseases that affects mankind in different ways and act as potential biomarkers of a certain disease. These contaminants affect the physiological functions of human beings through a steep the rise of metabolic changes leading to diseased conditions. To combat the invasive role of heavy metals and for a better understanding of diseases and treatment strategies, a branch of science named "metabolomics" is a rapidly developing intended highly to identify biomarkers for numerous human diseases or disorders (Denkert et al. 2006; Kruk et al. 2017). The changes in the metabolome reveal the pathophysiological conditions of biological systems due to genetic alterations in metabolic pathways or changes in catabolism and enzyme activities and even small alterations in enzyme activities and change in metabolite levels (Denkert et al. 2006; Kruk et al. 2017).

Heavy metals, whether intentionally or mistakenly ingested, have a high concentration in the human body, posing a health risk. Skin illnesses, neurological diseases such as Parkinson's disease, cardiovascular disorders, carcinoma, tumour, a rare autoimmune disorder, and degenerative disease are only a few of the typical examples of harm produced by heavy metals. Heavy metals create reactive oxygen species and disrupt DNA repair mechanisms, and depending on their chemical structure, they can induce toxicity at low doses, putting human health at risk.

Effect of gentoxicity on human health

Cells respond to DNA damage by triggering complex signaling pathways that select cell fate by facilitating not only DNA repair and survival mechanism but also cell death. The choice between cell death or cell survival after DNA damage based on several reasons that participate in identification of DNA damage and repair, as well as on factors associated with the initiation of apoptosis, autophagy, necrosis and senescence. Genotoxins have three major impacts on organisms through changing their genetic code. Genotoxins can be carcinogens (agents that cause cancer), mutagens (agents that cause mutations), or teratogens (agents that cause birth defects). Various illnesses in humans are caused by genotoxicant exposure, including DNA damage and repair modulation, as well as the distribution of many signal and metabolic transduction pathways **Figure 2.**

The DNA damage response (DDR) is extremely significant for all kinds of cancer and several disease progressions. DDR is essential for the beginning of carcinogenesis, interestingly, most of the carcinogens are genotoxic substances, which targeting the DNA in a direct or indirect method. Several cancer stimulating conditions are recognized to gene mutations in the DDR pathways such as TP53, ATM (mutated in Ataxia-Telangiectasia), BRCA1/2(Carney et al., 1998; Rotman and Shiloh, 1998;

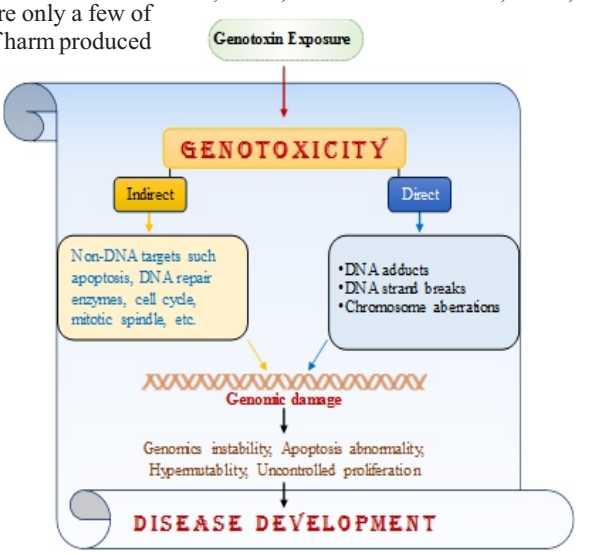

Figure 2: **The impact of genotoxicity on human health**

Beamish et al., 2002; Duker, 2002). DDR also executes development of malignant tumorigenic state, which is caused by mutations and chromosomal instability(Duker, 2002; Duijf and Benezra, 2013). Owing to the close interactions between carcinogenesis and DDR, most tumors have developed one or more compromised characteristic of the DDRto facilitate malignancy or to prevent cell death. As a result, DDR evaluation is extremely useful for illness prevention, diagnosis, and prediction of individual disease development susceptibility. In addition, cellular exposure to genotoxic agents such as ultraviolet (UV) light, oxidative stress, and chemical mutagens, result in a variety of nucleotide alterations and DNA strand breaks. The DDR system activates the suitable DNA repair process, however, in the condition of permanent impairment or damage, stimulates apoptosis pathway. Accumulating reports suggest that the identification of several proteins associated with sensing and reacting to DNA damage has improved our understanding the pathways of genotoxic stress responses. Gene mutations in the pathways of DDR can lead to several genomic instability syndromes and disorders that often strengthened susceptibility to cancer and disease progressions (Duker, 2002; Duijf and Benezra, 2013). Immunodeficiency phenotype, another hallmark of these disorders, is affected by failure to repair DNA strand breaks that arise during immune system development. These phenotypes showed by genomic instability syndromes or DDR suggest the importance of proteins that receive, transmit, or transduce signals related to the genotoxic stress response pathway.

DNA damage induces a prominent pathway for cell inactivation is apoptosis. Specific DNA lesions that activate apoptosis have been recognized such as bulky DNA adduct, DNA cross-links, O6-methylguanine, base N-alkylations, and DNA double-strand breaks (Roos and Kaina, 2006, 2013). DNA repair of these lesions is significant in inhibiting apoptosis process. Apoptosis induced by many chemical genotoxins is the result of DNA replication blockage, which facilitates DSB formation and replication fork failure. These formations of DSBs are vital downstream apoptosis-triggering lesions (Roos and Kaina, 2006). The damage DNA activated signaling and implementation of apoptosis is cell type and genotoxins depend on several mechanisms such as p53 status, death-receptor sensitivity, MAP-kinase stimulation and significantly, DNA repair ability(Roos and Kaina, 2006).

Conclusion

The recent and several previous studies have shown that genotoxicant agent exhibited the geneotoxic effect lead to cascading events which ultimately affect human health in many ways. Genotoxicity occur in both, somatic cell and germ cell. Genotoxic alterations in the somatic cells induce many diseases such as different type of cancers. While in germ cells, it leads to sterility, genetic disease and multifactorial diseases. The genotoxic implications of toxic substance either physical, chemical or environmental factors in causing genomic instability are the hotspots in studying the genotoxic stress response, cell cycle and DNA repair. More precisely, genomic instability or DNA damage results in various diseases that will help in unraveling the treatment pathways of

Genotoxic Agent	Human Disease
Arsenic	Chronic Lung Disease, Hyperpigmentation Cancer Liver Fibrosis Kidney Damage
Cadmium	Lung cancer
Chromium	Allergic Dermatitis
Copper	Long Term Exposure: Liver Or Kidney Damage Short Term Exposure: Gastrointestinal Distress
Inhalation of high levels of asbestos	Asbestosis
Inhalation of high levels of silica	Silicosis
Lead	Delays in physical or mental development in children Kidney related Problems
Mercury	lungs, kidneys, skin and eyes related Problems Disturb the nervous, digestive and immune systems
Nitrosamines	Kidney Tumours
Polluted air and particulates	Lung Cancer
Tamoxifen	Endometrial Cancer

Table 1 List of some human disease caused by genotoxic agent

diseases at the molecular levels. Genotoxicity occur in both, somatic cell and germs cell. In conclusion, recent studies have shown that heavy metal genotoxicant agent exhibited the geneotoxic effect lead to cascading events which ultimately affect human health in many ways.

References

Almaqwashi AA, Paramanathan T, Rouzina I, Williams MC (2016) Mechanisms of small molecule-DNA interactions probed by single-molecule force spectroscopy. *Nucleic Acids Res* 44**:** 3971-3988

Bajpayee M, Pandey AK, Parmar D, Dhawan A (2005) Current Status of Short-Term Tests for Evaluation of Genotoxicity, Mutagenicity, and Carcinogenicity of Environmental Chemicals and NCEs. *Toxicol Mech Methods* 15**:** 155-180

Beamish H, Kedar P, Kaneko H, Chen P, Fukao T, Peng C, Beresten S, Gueven N, Purdie D, Lees-Miller S (2002) Functional link between BLM defective in Bloom's syndrome and the ataxia-telangiectasia-mutated protein, ATM. *Journal of Biological Chemistry* 277**:** 30515-30523

Blank M, Goodman R (2011) DNA is a fractal antenna in electromagnetic fields. *International Journal of radiation biology* 87**:** 409-415

Carney JP, Maser RS, Olivares H, Davis EM, Le Beau M, Yates JR, 3rd, Hays L, Morgan WF, Petrini JH (1998) The hMre11/hRad50 protein complex and Nijmegen breakage syndrome: linkage of double-strand break repair to the cellular DNA damage response. *Cell* 93**:** 477-486

Cavalieri E, Saeed M, Zahid M, Cassada D, Snow D, Miljkovic M, Rogan E (2012) Mechanism of DNA depurination by carcinogens in relation to cancer initiation. *IUBMB Life* 64**:** 169-179

Chou IN (1987) Assay for the detection of epigenetic toxic (non-genotoxic) substances. *In. Google Patents*

Colotta F, Allavena P, Sica A, Garlanda C, Mantovani A (2009) Cancer-related inflammation, the seventh hallmark of cancer: links to genetic instability. *Carcinogenesis* 30**:** 1073-1081

Coussens LM, Werb Z (2002) Inflammation and cancer. *Nature* 420**:** 860-867

Denkert C, Budczies J, Kind T, Weichert W , Tablack P, Sehouli J, Niesporek S, Könsgen D, Dietel M and Fiehn O (2006) : Mass spectrometry-based metabolic profiling reveals different metabolite patterns in invasive ovarian carcinomas and ovarian borderline tumors. Cancer Res 66: 10795-10804.

Duijf PH, Benezra R (2013) The cancer biology of whole-chromosome instability. *Oncogene* 32**:** 4727-4736

Duker NJ (2002) Chromosome breakage syndromes and cancer. *Am J Med Genet* 115**:** 125-129

Errol CF, Graham CW, Wolfram S, Richard DW, Roger AS, Tom E (2006) DNA Repair and Mutagenesis, Second Edition. *American Society of Microbiology*

Jaishankar M, Tseten T, Anbalagan N, Mathew BB, Beeregowda KN (2014) Toxicity, mechanism and health effects of some heavy metals. *Interdisciplinary toxicology* 7**:** 60-72

Kastan MB, Bartek J (2004) Cell-cycle checkpoints and cancer. *Nature* 432**:** 316-323

Kruk J, Doskocz M, Jodłowska E, Zacharzewska A, Łakomiec J, Czaja K and Kujawski J (2017): NMR techniques in metabolomic studies: A quick overview on examples of utilization. Appl Magn Reson 48: 1-21

Mishra N, Srivastava R, Agrawal UR, Tewari RR (2016) An insight into the genotoxicity assessment studies in dipterans. *Mutation Research/Reviews in Mutation Research*

Miyakoshi J (2013) Cellular and molecular responses to radio-frequency electromagnetic fields. *Proceedings of the IEEE* 101**:** 1494-1502

Nagpure N, Srivastava R, Kumar R, Dabas A, Kushwaha B, Kumar P (2015) Assessment of pollution of river Ganges by tannery effluents using genotoxicity biomarkers in murrel fish, Channa punctatus (Bloch). *Indian J Exp Biol* 53**:** 476-483

Nagpure NS, Srivastava R, Kumar R, Dabas A, Kushwaha B, Kumar P (2016) Mutagenic, genotoxic and bioaccumulative potentials of tannery effluents in freshwater fishes of River Ganga. *Human and Ecological Risk Assessment: An International Journal***:** 00-00

Roos WP, Kaina B (2013) DNA damage-induced cell death: from specific DNA lesions to the DNA damage response and apoptosis. *Cancer Lett* 332**:** 237-248

Rotman G, Shiloh Y (1998) ATM: from gene to function. *Hum Mol Genet* 7**:** 1555-1563

Scenihr (2015) Opinion on potential health effects of exposure to electromagnetic fields. *Bioelectromagnetics* 36**:** 480-484

Spiegel J, Maystre LY (1998) Environmental pollution control and prevention. *In* S JM, ed, Vol 2. International Labour Office, Geneva

Srivastava R, Singh UM, Dubey NK (2016) Histone Modifications by different histone modifiers: insights into histone writers and erasers during chromatin modification. *Journal of Biological Sciences and Medicine* 2**:** 45-54

Takkouche, B.; Regueira-Méndez, C.; Montes-Martínez, A. (2009) Risk of cancer among hairdressers and related workers: A meta-analysis. Int. J. Epidemiol., 38, 1512–1531.

Tchounwou PB, Yedjou CG, Patlolla AK, Sutton DJ (2012) Heavy metal toxicity and the environment. *In* Molecular, clinical and environmental toxicology. Springer, pp 133-164

Tice R, Agurell E, Anderson D, Burlinson B, Hartmann A, Kobayashi H, Miyamae Y, Rojas E, Ryu J (2000) Single cell gel/comet assay: guidelines for in vitro and in vivo genetic toxicology testing. *Environmental and molecular mutagenesis* 35**:** 206-221

Torgovnick A, Schumacher B (2015) DNA repair mechanisms in cancer development and therapy. *Front Genet* 6**:** 157

Policy

Shyama Prasad Mukherjee Rurban Mission (SPMRM): A Government Initiative towards Enhancement of Basic Education in Rural Areas

❑ **Rohit Kumar Mishra[1] Ashutosh Pandey[1,2] and Vani Mishra[3]**

Introduction

As per the 2019 consensus from World Bank the rural population of India accounts to be around 895 million which stands to be ~65% of country's population[1]. Furthermore, this marks a growth of growth to 4% from 2011[2]. The Indian government during the past decades have brought about several schemes and initiatives aimed for the upliftment of rural areas and bridging its gap from the adjoining urban areas. However, the significant facts associated with the rural areas in the country is that these are not the ***stand-alone settlements*** but are a part of cluster settlements, which lay in close proximity to each other and depends relatively upon each other for their needs, activities and amenities.

Cluster is defined as a set of geographically contiguous villages. On practical grounds the villages of the clusters are the units that follow an administrative convergence of Gram Panchayats and stands within a single block/tehsil for administrative convenience[3]. Centre for Policy Research has estimated that these clusters on account of their locational, competitive advantages have massive potential for growth and could be exemplified as economic drivers of the country. The policy makers anticipated the formation of such 61224 clusters which once developed would be referred to as ***'Rurban'***[4]**.** Working on this perception the Government of India launched **Shyama Prasad Mukherji Rurban Mission (SPMRM)** on 21st February 2016, under **Ministry of Rural Development** with an aim to develop 300 rural growth clusters across the country in a time-bound manner.

The National Rurban Mission through SPMRM visions towards the creation of clusters of **'Rurban Villages'** by incorporating basic and essential urban facilities but without compromising or extinguishing the essence of the rural community life. This shall be done with special emphasis on equity and inclusiveness[5]. The details of the Provision of Urban Amenities in Rural Areas (PURA) and pilot evaluation of the rural areas were considered in the 12th five-year plan[6]. Subsequently, over the last five years, about 300 Rurban Clusters have been developed across the country which not only include states but also union territories to stimulate local economic development by developing skilled and trained local entrepreneurs, enhance basic amenities, infrastructure and livelihood by investing 21 indicative parameters of development under Framework of Implementation (FOI)[7]. These 21 parameters are (a) sanitation (b) piped water supply (c) solid & liquid waste management (d) village street lights & electrification (e) access to village streets with drains (f) inter village roads connectivity (g) public transport (h) LPG gas connection (i) health (j) education (k) digital literacy (l) citizen services center (m) environment conservation & management (n) housing (o) sports infrastructure (p) social infrastructure (q) social welfare (r) skill development linked to economic activities in cluster (s) agri-services, processing and allied activities (t) MSME strengthening, employment generation & SHG formation (u) tourism promotion.

Taken together, the broader ***outcomes envisioned of the Mission are***[5] **–**

a. Bridging the rural-urban divide-on account of: civic amenities, economic, technological and those related to facilities and services.

b. Stimulating local economic development with emphasis on reduction of poverty and unemployment in rural areas

c. Attracting investment in rural areas with private sector partnerships

A systematic and scientific approach was employed for defining the clusters. This was based upon the spatial characteristics of the demographic, social and economic profile of the area. A detailed report called as Integrated Cluster Action Plan (ICAPs) were prepared delineating the cluster as planning areas and covering (1) strategy for the cluster integrating the vision for each Gram Panchayat in the cluster (2) The

[1]Centre of Science and Society, IIDS, University of Allahabad, Prayagraj-211002
[2]School of Biological Sciences, Indian Institute of Technology (IIT), New Delhi
[3]DST Women Scientist, Nanotechnology Application Centre, University of Allahabad, Prayagraj-211002

desired components for the cluster (3) The resources to be converged under various schemes (4) The Critical Gap Funding (CGF) required for the cluster.

These ICAPs provide critical guidance on key aspects envisaged for a given cluster including the developmental aspirations, interventions, schemes being converged, implementation strategy, and expected impact[7]. Under the ***Phase I*** of the mission, a total of 10 clusters in Uttar Pradesh (UP) were identified as RURBAN clusters and approved for financial investments.

Table1: Clusters in UP are divided into 3 categories, namely: Category A, Category B, and Category C.

Category	Cluster
A	Juggaur Chitehara Patehara Kalan
B	Bansgaon Mau Mustakil Dasna Dehat Barokhar Kasahai
C	Silana Rudhahu Mustakil

The current study was performed to study the role of Shyama Prasad Mukherji Rurban Mission (SPMRM) in the Educational Sector for the enhancement of basic education in rural areas of UP.

Evaluation methodology of Shyama Prasad Mukherji Rurban Mission (SPMRM)

With considered margin of error of survey (ε) sample proportion (p) and z-score for number of standard deviations from mean, at 5%, 0-5 and 1-96 (95% CI) respectively, we calculated the survey sample size using the formula:

$$sample\ size = \frac{\frac{z^2 \cdot p(1-p)}{\varepsilon^2}}{1+\left(\frac{z^2 \cdot p(1-p)}{\varepsilon^2 \cdot N}\right)}$$

Fig.1. Team members from the Centre of Science and Society (Rural Technology & Development) University of Allahabad for the survey of Bharokhar Cluster.

The team randomly approached to individual households, from which one person was requested to answer the survey questions. Survey was done in presence of RURBAN nodal officers' representatives and the Gram Pradhan so as to ensure availability and maximum participation from the village community. Questions asked were part of the 21 parameters listed out in the RURBAN guidelines which are grouped into the three major categories of basic amenities, social & digital amenities, and economic activities.

Results and Discussion:

Assessment of Basic Details of the Rural Population:

In the district Prayagraj, Cluster Barokhar comprise of 12 villages. We surveyed the population with approximate representation of both male and female with 56.20% and 43.80% respectively (Fig. 2a). The population was categorized in three age gaps. Fig 2b represents that the major age group survey was 26-45 years with 54.71% population. The rest two groups <25 years and >45 years were represented by ~17.18% and 28.10% respectively. The survey teams have tried to cover a broader population groups with equal representation on account of gender and age groups.

The educational qualification and the source of livelihood of the cluster population was further studied (Fig 3c,d). In order to study the educational qualification the population was subdivided into groups namely, Illiterate, functional literate, Primary, Secondary, Higher Secondary and

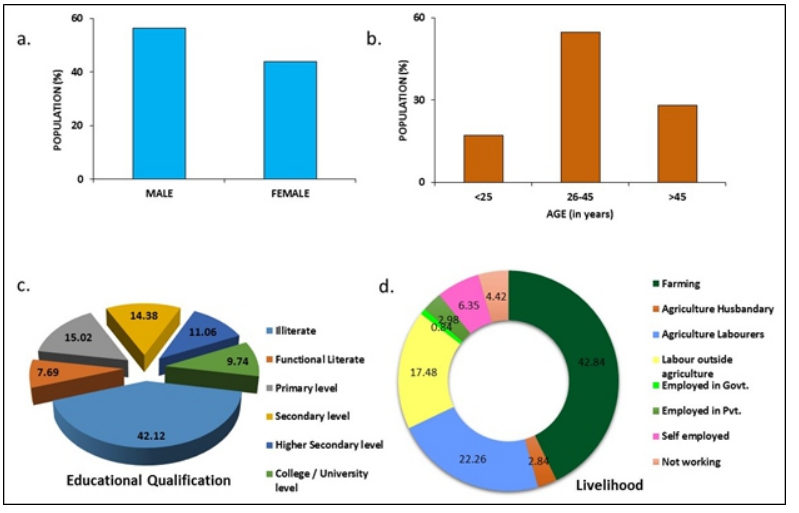

Fig.2. Basic Details of the population from Barokhar Cluster. (a) Gender, (b) Age in Years (c) Educational Qualification and (d) Source of Livelihood

College/University level. A major portion of the population represented by around 42.12 % was illiterate followed by other classes with a marginal population ranging from about 7.69-15.02%. Hence, the literacy rate of the cluster was evaluated to be around 50.19%. The livelihood section of the survey was based primarily on the employment of the village population. The prime mode of livelihood was Farming adopted by about 42.84% population. This was followed by agriculture laborers with 22.26% and labourers outside agriculture with 17.48%; the three groups constituted the main worker group with 82.57% .The other minor groups included people engaged in Animal Husbandry (2.84%), jobs in government (0.84%) or private sector (2.98%) and self-employment (6.35%), constituting about 13.00% of marginal workers (Fig 3). Taken together, it is important to mention that the population was equally assessed based on gender and age categories. The results further indicated that that Barokhar cluster is primarily an agriculture dependent area.

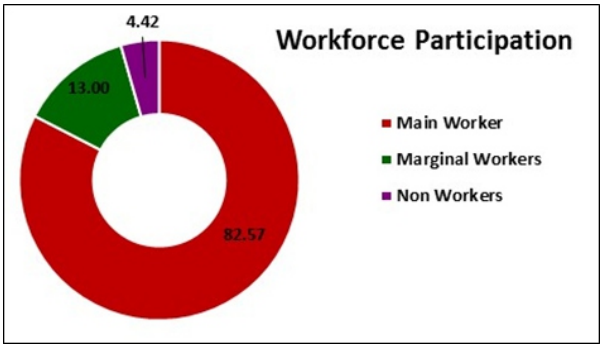

Fig 3: Work Force Participation of the population of Barokhar Cluster in terms of main and marginal workers.

Enhancement of basic education under Shyama Prasad Mukherji Rurban Mission (SPMRM):

Education stands to be one of the major pillar of Social Infrastructure Plan under SPMRM. Understanding the necessity of this component, a convergence fund of about Rs.7.17 Cr and Critical Gap fund of about Rs.5.13Cr has been sanctioned under this head[8]. The Mission aims to establish and upgrade the basic infrastructure in schools equipped with Computers and Computer aided learning materials, construction of Library/e-Library, Smart Classrooms facilitated with Solar powers and Anganwadi development[9]. The mission further aims towards the training programs of the teachers and also study and exploration tours for the students. There stands a balanced approach for the development of both human resource and infrastructure development. Furthermore, special emphasis has been laid on improvising the educational setup with new and innovative tools.

The survey team studied the % of School going children with particular emphasis to their level of education. We also highlighted the infrastructure developed under the Rurban Mission. The population was also asked to rate the improvement the SPMRM has brought in the field of education.

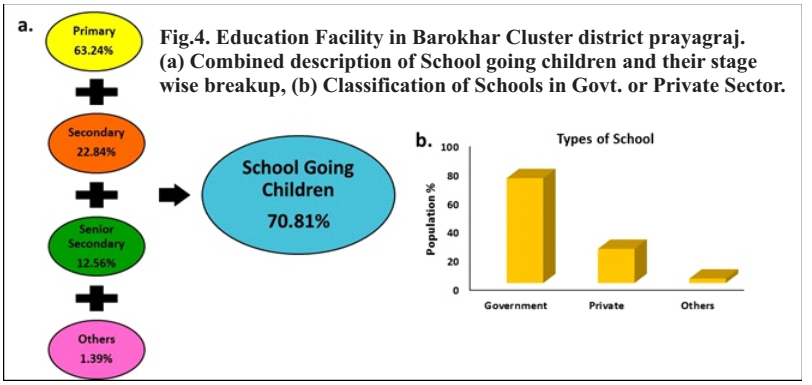

Fig.4. Education Facility in Barokhar Cluster district prayagraj. (a) Combined description of School going children and their stage wise breakup, (b) Classification of Schools in Govt. or Private Sector.

It was observed that about 70.81% children in the cluster attended the school at various level. The majority of student with 63.24% were found to attend the primary level education, 22.84% to the secondary level, Senior Secondary with around 12.56% and others (University/College) comprise of about 1.4%. The types of School attended were further classified into Government and private and it was observed that about 73% school going population opted for government school with remaining 27 % population opted for either private or other formats (Fig 4).

Fig. 5. Infrastructure facility with smart class rooms in composite schools of various clusters of Uttar Pradesh under SPMRM, Ministry of Rural Development.

Fig.6. Solar computer laboratory and e-Library for enhancing primary education of various clusters of Uttar Pradesh under SPMRM, Ministry of Rural Development.

Fig.5 and 6 reveals the development made under the SPMRM in the rural areas of Uttar Pradesh. It is also highly evident from the images that the smart classes, solar computer laboratories, e-libraries are in fully functional mode. The spacious and airy classrooms shall further help in the basic growth and development of rural children. This is further facilitated with the mid-day meal and the toilets build in the school campuses. The dinning-halls are specially designed for the mid meals. The government has also taken cognizance of the growth and development of early growers. This is evident in the development and modernization of Anganwadi kendras. Fig. 7 represent an Aganwadi Kendra at Dasna Dehat of Ghaziabad Cluster of Uttar Pradesh.

The team also assessed the level of improvement in the quality of infrastructure education as per the perspective of the rural population. ~50% population agreed that the SPMRM had brought about certain improvements in both the points, however ~30% population emphasized that much more could be done to further facilitate the village population under the education sector.

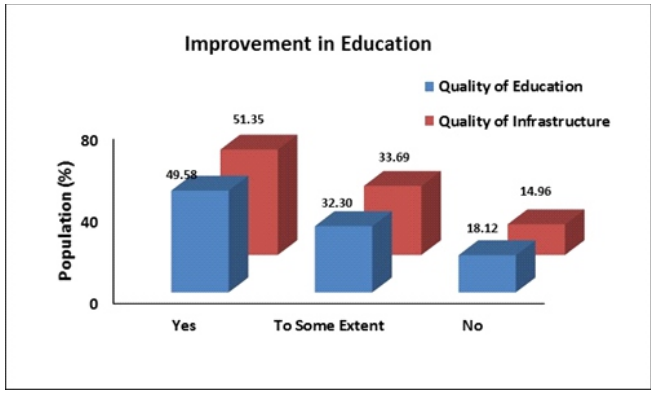

Fig 8: Improvement in quality and infrastructure under SPMRM in Uttar Pradesh.

Fig.7. Modernization of Aganwadi Kendra of Dasana Dehat Ghaziabad cluster of Uttar Pradesh under SPMRM, Ministry of Rural Development.

Conclusion:

In the past decade, there have been a number of welfare schemes and activities aimed at uplifting the rural areas and reducing the rural-urban divide. SPMRM could be designated as a dedicated efforts for improving 'ease of living' and 'ease of doing business' in rural areas that is now classified as Rurban villages. Close to Rs.28,000 crore investment has been approved and works worth greater than Rs. 9,000 crore have already been completed. The approach has translated into bridging gap in the availability of basic amenities, infrastructure and livelihood opportunities in rural areas. Further, in the wake of concerted policy directives and availability of institutional machinery, government and non-government, there lies a significant opportunity to turn these areas into growth centers and fuel transformative development in rural India. Also the developments in the basic education sectors will further enlighten other sectors like skill development rural entrepreneurships and livelihood.

Acknowledgements:
We acknowledge the support of Ministry of Rural development and Department for Science and Technology, Government of India.

References:

1. World Bank - Rural Population of India
2. World Bank - Rural Population (% of Total)
3. https://rurban.gov.in/index.php/Public_home/rurban_cluster
4. CPR paper reference - CPR-Future Town discourse
5. Consultation Paper on Rurban 2.0
6. The evaluation was conducted by National Institute of Rural Development (NIRD) and technical support from Asian Development Bank for restructured scheme http://www.nrcddp.org/file_upload/PURA.pdf.
7. Shyama Prasad Mukherji Rurban Mission Proof of Concept (POC)
8. DPR Report of Uttar Pradesh
9. ICAP report of Uttar Pradesh

Prof. H. S. Srivastava Foundation for Science and Society, Lucknow, India celebrated the National Science Day on 28th February 2022 through online mode. The programme was illustrious with the UN assembly theme of this year "International Year of Basic sciences for sustainable development" and "Vigyan Sarvatra Pujyate" refrain of Ministry of Science and Technology India.

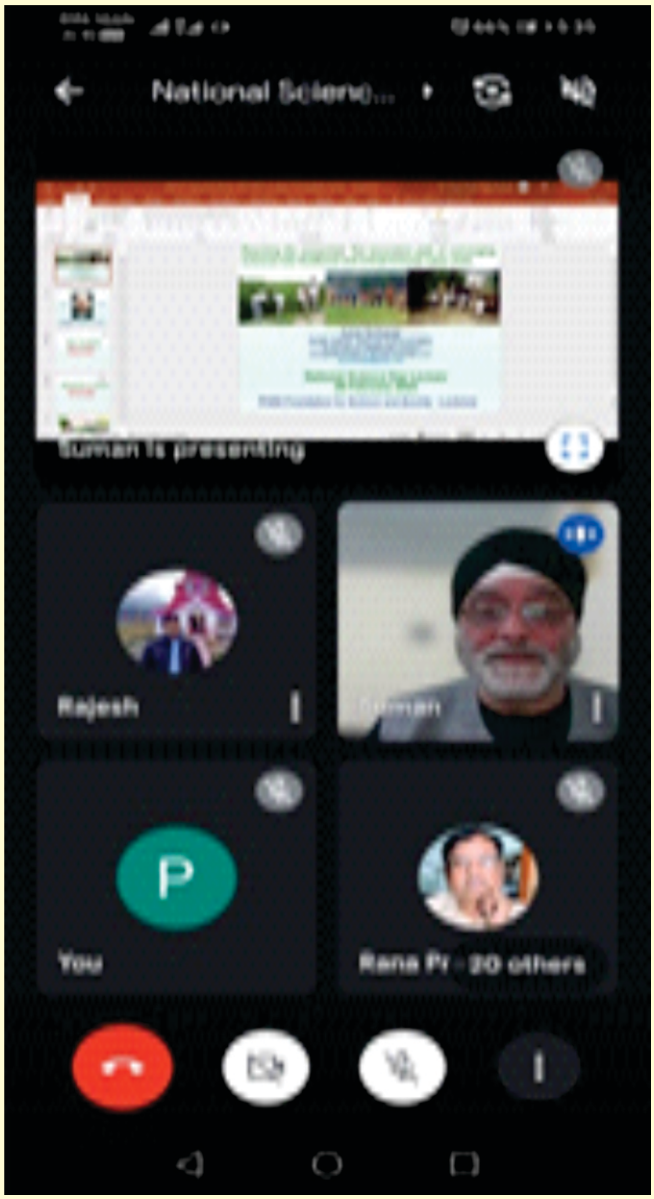

The programme was started at afternoon with the welcome remarks from Dr. Rana Pratap Singh, General Secretary, PHSSFSS, India. Dr. Singh welcomed all the dentaries. Further Dr. Singh deliberated about the importance of the day and the foundation, in details.

Dr. Dr. P. K. Seth, NASI Senior Scientist, and Ex-President PHSSFSS, Lucknow briefly introduce Chief Guest and also give importance of the theme.

The Chief Guest of the programme was Dr. Dr. S. P. S. Khanuja, Former Director CSIR-CIMAP, Lucknow and Founder Chair, Flora Fauna Science Foundation. Dr. Khanuja delivered his talk on the topic "*Reaching the unreached: The innovation path of converging sciences into livelihood and entrepreneurial value chain*". Dr. Khanuja given the prominence on "Think beyond" is the mantra to innovate while science provides the runway for wings of the mind to take off to reach where it never did before! The answer to the quest of mind for what, how and why is simple way to define science and hence any one can become a scientist in life by efforts to satisfy this quest. But there are a few rather very few examples among them who dare to ask "Why not?" That's the route to "innovation" which leads to the unreached horizons.

After the culmination of chief guest lecture, Dr. P. K. Seth sir, given his presidential address and emphasized that there is a need to make strategies to do science for society and take research from lab to land and joint hand for sustainable development.

At the end Dr. R. S. Dwivedi Sir, given vote of thanks to Chief Guest and all the participants. The programme was coordinated by Dr. Rajesh Bajpai.

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

हेड आफिसः ई–998, रत्नाकर खण्ड, शारदा नगर, रायबरेली रोड, लखनऊ

E-mail: bachpanexpress@gmail.com, www.bachpanexpress.com, Mob.: 9198255566, 9580803904